अध्यात्म-विद्या :
एक परिचय

कृपाल सिंह

'अध्यात्म-विद्या : एक परिचय'

मूल अंग्रेज़ी पुस्तक :

'Spirituality : What it is'

प्रथम संस्करण : 1959

हिंदी संस्करण :

प्रथम संस्करण : 1971

वर्तमान संस्करण (संशोधित) : 2021

समर्पण

सर्वशक्तिमान परमात्मा
को,
जो कि सभी अवतरित
पूर्ण पुरुषों में काम करता रहा है
और
परम संत बाबा सावन सिंह जी महाराज को,
जिनके चरण-कमलों में बैठ कर लेखक ने
पवित्र नाम का अमृत पान किया।

विषय-सूची

जिज्ञासुओं से

परमात्मा आत्मा में है और आत्मा परमात्मा में– ठीक इसी तरह जैसे समुद्र मछली में है और मछली समुद्र में।

— सेंट कैथरीन

अध्यात्म-विद्या क्या है, इसकी परिभाषा करना सरल नहीं है। इसका क्षेत्र और विस्तार इतना बड़ा है और इसके इतने पहलू हैं कि कठिनाई से ही उनका शब्दों में बयान किया जा सकता है। संक्षेप में कहना होगा कि यह जीवन के अपरिवर्तनीय (जो बदलता नहीं) और शाश्वत तथ्यों से संबंधित है— वे चेतन तत्त्व, जो समस्त सृष्टि को जीवन देते हैं।

'आत्मा' तथा 'अध्यात्म के नियमों' की खोज इंसान के हृदय में इतनी ही पुरातन है, जितनी कि इंसान में चेतनता का उदय होना; यह विषय इतना 'चिर पुरातन' होते हुए भी आज भी नित्य नूतन है और आगे भी रहेगा। चेतनता या आत्मा मनुष्य (अथवा जीवमात्र) की जीवनदायिनी ज्योति है, जिस के प्रकाश और चेतना में वह जीवित होकर अपना अस्तित्व रखता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि हर युग और काल में आए आध्यात्मिक पुरुष– ऋषि, मुनि, संत और साध जीवन का रहस्य खोजने का प्रयत्न करते रहे हैं।

स्पष्ट है कि अध्यात्म का विषय आत्मा की समस्याओं से संबंधित है— उदाहरणार्थ, इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई, शरीर में इसका स्थान कहाँ है और शरीर से इसका संबंध क्या है, भौतिक जगत में इसके कार्य—कलाप क्या हैं और क्या इसे शरीर, मन और इंद्रियों से इच्छानुसार अलग कर लेना संभव है? यदि यह संभव है, तो इससे संबंधित गतिविधियाँ क्या हैं? इसका संबंध आत्मा की विभिन्न रूहानी खंडों की यात्रा तथा आत्मा की उनको पार करने (आने—जाने) की योग्यता, अंतिम लक्ष्य या मुक़ाम तथा

इससे मिले—जुले अन्य विषयों से है– जैसे आत्मा की देखभाल कैसे करें, इसे क्या आहार दिया जाए, क्योंकि इसके स्वास्थ्य पर ही मन और शरीर का स्वास्थ्य निर्भर है। ये कुछ मुख्य प्रश्न हैं, जो हमारी खोज के विषय हैं।

अध्यात्म बौद्धिक तर्क—वितर्क का विषय नहीं, वरन् यह मुख्यतः एक प्रयोगात्मक विज्ञान है। विश्व के विभिन्न धर्मों के अनेकानेक धर्मशास्त्र हमें इसके केवल बौद्धिक पक्ष की जानकारी देते हैं, ये हमें मानव—शरीर की प्रयोगशाला में स्थित 'सत्' का साक्षात् अनुभव कराने में असमर्थ हैं। वेद, उपनिषद्, पारसियों का अवेस्ता, बौद्धों के त्रिपटक, ईसाइयों के सुसमाचार (Gospels), पाक कुरान, गुरु ग्रंथ साहिब, जैनियों के त्रिरत्न तथा अन्य प्रामाणिक धर्मग्रंथ तथा उनकी टीकायें, आधुनिक या पुरातन (महाभाष्य, अंग, उपांग इत्यादि), रास्ते की ओर इशारा तो कर सकते हैं, परन्तु वहाँ (लक्ष्य पर) पहुँचाने में असमर्थ हैं। इनका मुख्य लाभ यह है कि ये परा–विद्या को (मन, इंद्रियों से न जानी जाने वाली), जो कि आत्मा की विद्या है, पाने की रुचि हमारे अन्दर पैदा करते हैं। परन्तु देहातीत (देह—ध्यास से ऊपर) होने का अनुभव सिर्फ़ एक जीवित सत्गुरु या मुर्शिद–ए–क़ामिल, जो कि इस विद्या के व्यावहारिक पक्ष में निपुण और समर्थ हों, दे सकते हैं। जीवन और ज्योति पूर्ण पुरुष की जीवन—धारा से ही आती है, उनकी एक दया—दृष्टि शिष्य के जीवन को पलट देने की सामर्थ्य रखती है।

मानवता के महानतम सत्गुरु, अपने शिष्य की व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार, निम्न तीनों पद्धतियों (तरीक़ों) का उपयोग करते हैं :

1. अण्व (स्थूल) : अपने वचनों द्वारा आध्यात्मिक निर्देश देना।

2. शाक्त (सूक्ष्म) : बाहरी साधनों के बग़ैर, शिष्य में उच्चतर आध्यात्मिक चेतना डाल देना।

3. शांभव (कारण, Transcendental) : अनंत कृपा दान से शिष्य को अध्यात्म की उच्चतम अवस्था में पहुँचा देना, जबकि शिष्य ने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया हो।

गुरु अंतरीय आत्मिक मार्ग पर— जब आत्मा जीते–जी देहध्यास को छोड़ देती है या मृत्यु के समय पर— अपने ज्योतिर्मय, 'गुरुदेव' स्वरूप में प्रकट होकर शिष्य के साथ जाता है, इसमें कभी किसी चूक की गुंजाइश नहीं है और सच्चा गुरु (सत्गुरु) होने के कारण वह प्रभु की योजना को पूर्ण करता है। ऐसे गुरु की– जो एक साथ ही अलग–अलग मंडलों में गुरु, गुरुदेव तथा सत्गुरु के रूप में काम करता है– आवश्यकता बहुत अधिक है, इसमें शक़ नहीं।

संक्षेप में अध्यात्म का विषय सिर्फ़ 'आत्म—साक्षात्कार' और 'परमात्म–साक्षात्कार' है। अतः इसका धर्माचरण के बाहरी कर्मकांडों से, जो कि आजकल हमने अपना लिए हैं, कोई संबंध नहीं है।

अध्यात्म संप्रदायवाद से भी भिन्न है। आज जबकि विश्व के अधिकांश बड़े–बड़े धर्म अपने आप में ज़्यादा से ज़्यादा संप्रदायवादी बन चुके हैं, रूहानियत सदा ही सबकी सांझी रही है और सभी धर्म वाले इस सर्व सम्मत रहस्यवादी पाठशाला में दाख़िल हो सकते हैं। सीलबंद धर्मों के विपरीत, रूहानियत प्रभु की खुली किताब है, जिसे वक़्त का सत्गुरु अपनी तवज्जोह से ज़िंदगी देता है और जिसे वह ज़माने के अनुसार, प्रचलित बोल–चाल में पेश करता है। परिणामस्वरूप, आज के इस वैज्ञानिक युग में यह भी अन्य विज्ञानों की तरह से प्रस्तुत की जा रही है। यह अंकगणित के जैसे ही सुस्पष्ट है और इसके परिणामों को वैज्ञानिक पद्धति पर परखा भी जा सकता है।

सावधानी इस बात की रखनी होगी कि अध्यात्म, रूहानियत या परमार्थ को निम्नलिखित न समझ लिया जाए :

1. प्रेतवाद (Spiritism) : इसमें प्रेत आत्माओं के अस्तित्व पर बल दिया जाता है। ऐसी आत्मा जब शरीर से अलग होती है, तो निचले क्षेत्रों में भूत–प्रेत (जिन्न) की तरह मंडराती है या फिर अंड (सूक्ष्म) के निचले क्षेत्र में फ़रिश्ते के रूप में घूमती है।

2. मृत-आत्मवाद (Spiritualism) : यह मानव व्यक्तित्व के बने रहने पर विश्वास है : जो 'जीवित हैं' और जो 'चले गए हैं', उनके बीच में संदेशों का आदान–प्रदान मृत आत्मा को बुलाकर, उसका संदेशा

लिख कर किया जाता है (जिसमें मृत आत्मा लिखने वाली नोकदार पेंसिल तख़्ती पर स्वयं लिख देती है या अपनी उपस्थिति को खटखटा कर दर्शाती है)।

3. काला जादू (Mesmerism) : इसमें 'पशुत्वाकर्षण शक्ति' (animal magnetism) के बल–प्रयोग द्वारा एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को तन्द्रा (नींद की विशेष स्थिति) में डालकर, उसे अपनी इच्छा शक्ति के अधीन कर, ऐच्छित कार्य करवा लेता है।

4. सम्मोहन (Hypnotism) : इसमें एक प्रकार की गहरी नींद पैदा कर दी जाती है, जिसमें की चेतना लुप्त हो जाती है और वह 'सम्मोहनकर्ता' के सुझावों पर काम करता है।

अध्यात्म, इन सबके विपरीत, मनुष्य की चेतनता के विकास का विज्ञान है और इसमें मन–बुद्धि, इंद्रियों और शारीरिक चेतनता से ऊपर उठकर, ब्रह्मांडीय चेतनता को पाना है और उससे भी ऊपर जाकर, प्रभु की दैवी योजना को समझना है और प्रभु में अभेद हो जाना है।

इन थोड़े से शब्दों में मैं सत्य के मुतलाशियों (जिज्ञासुओं) से निवेदन करता हूँ कि आगे लिखे गए पृष्ठों का वे सावधानीपूर्वक अध्ययन करें, ताकि इस महत्त्वपूर्ण किन्तु अत्यंत ही उपेक्षित विषय, 'अध्यात्म' का सही महत्त्व समझ में आ सके।

- कृपाल सिंह

1.
अध्यात्म–विद्या

जितने भी फ़लसफ़े व धर्म आज दिन तक आए, मनुष्य उन सबसे पुराना है। सब धर्म एक बड़े अच्छे उद्देश्य को सामने रखकर बनाए गए, जो यह था कि लोग सदाचारी बनें और अपनी आत्मा का कल्याण करें, ताकि अपने–आपको मन इंद्रियों के घाट से हटा कर अंत में मुक्ति प्राप्त कर सकें। देखने में आता है कि अपार धन–दौलत, आचार संहताओं और ज्ञान–बुद्धि के अर्जन के होते हुए भी मनुष्य अपने जीवन से पूरी तरह संतुष्ट नहीं है। इसका कारण यही है कि वह प्रेम के मूल सत्य, जो सब धर्मों की नींव में बसता है, को ग्रहण नहीं कर सका है, ।

प्रभु ने इंसान बनाए और इंसानों ने धर्म और समाजें बनाईं। इसलिए इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि धर्म के लिए है– इंसान धर्म के लिए नहीं। हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, सिक्ख आदि सब धर्म समय की आवश्यकता के अनुसार बने। इन धर्मों का मुख्य उद्देश्य यही था कि वे अपने समय की परिस्थिति में पैदा होने वाली ज़रूरतों को पूरा करें।

यदि हम गुज़रे हुए ज़माने की ओर ध्यान दें, तो हमें पता चलता है कि 500 वर्ष पूर्व सिक्ख धर्म का नामो–निशान नहीं था। इसी प्रकार मुसलमानों का 1,400 वर्ष पूर्व, ईसाइयों का 2,000 वर्ष पूर्व और बौद्ध और जैन धर्मों का 5,000 या 6,000 वर्ष पूर्व कोई चिन्ह न था। आर्य जाति के आगमन से पूर्व अनेक जातियाँ बनीं और लुप्त हो गईं। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य सदैव मनुष्य ही रहा है; मनुष्य का दर्जा सारी सृष्टि में सबसे ऊँचा है, वह सदा से ऐसा ही रहा है– चाहे पूर्व हो चाहे पश्चिम। वह देहधारी आत्मा है। आत्मा में धर्म, जाति या रंग का कोई प्रश्न नहीं। उसकी आत्मा प्रभु का ही अंश है :

कहु कबीर इहु राम की अंसु।।

– आदि ग्रंथ (गोंड कबीर, पृ॰871)

शेख़ सा'दी ने भी फ़रमाया है कि सब जीवों की उत्पत्ति एक ही जौहर से हुई है :

बनी आदम आअज़ाए यक़ दीगर अन्द,
किह् दर आफ़्रीनश ज़ यक़ जौहर अन्द।

– शेख़ सादी, गुलिस्तान (पृ॰42)

अर्थात् सभी महात्माओं के जीवन में एक ही सिद्धांत काम करता नज़र आता है– वे सब जीवों के साथ, क्या आस्तिक क्या नास्तिक, प्रेम करते हैं।

प्रत्येक देश और प्रत्येक युग में महात्मा और पूर्ण पुरुष आए हैं। प्रत्येक युग में लड़ाई, झगड़े और भ्रष्टाचार कुदरती तौर पर होते हैं। ऐसे समय में महापुरुषों का जन्म होता है। बिगड़ी हुई हालत को ठीक करना उनका काम है। सब धर्मों में ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया और जीवों का उद्धार करने का बीड़ा उठाया। सभी धर्म ऐसे महापुरुषों की शिक्षाओं का नतीजा हैं। सब धर्मों–मतों का उद्देश्य हमेशा एक ही रहा है– प्रभु–प्राप्ति का मार्ग दिखलाना और आत्मा व परमात्मा के बीच की खोई कड़ी को फिर से जोड़ना। उस प्रकार, सब धर्म, अपने–आप में लक्ष्य न होकर, लक्ष्य तक पहुँचने के साधन हैं। पर हम व्यवहारिक रूप में देखते हैं कि कोई भी धर्म हमें पूरा संतोष नहीं दे सकता। इसका तात्पर्य यह नहीं कि धर्म में दोष है, बल्कि दोष वास्तव में उन धर्माचार्यों में है, जो धर्म के आदेशों को लोगों पर लागू करते हैं।

2.
सच्चा धर्म :
सबसे प्यार और प्रभु की याद

सच्चा धर्म क्या है? यह एक कुदरती सवाल है, जो किसी न किसी समय मनुष्य के सामने ज़रूर आता है। हमारे पास ऐसे सैंकड़ों और हज़ारों ग्रंथ व लेख हैं, जो जीवन की ज़रूरी समस्याओं से संबंध रखते हैं, परन्तु वे इस कठिन प्रश्न का एकमत से उत्तर नहीं दे पाते। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। प्रश्न का 'सही उत्तर' केवल एक ही हो सकता है, और उसे प्राप्त करने के लिए हमें खोज जारी रखनी चाहिए। परन्तु ऐसा करने से पहले हमें 'धर्म' का असली उद्देश्य जान लेना चाहिए। सब धर्मों का उद्देश्य समान रूप से एक ही है– परमानंद व प्रभु की दिव्य ज्योति की प्राप्ति। तीर चलाने वाले अनेक हैं, परन्तु निशाना सबका एक है। यदि हमारा प्रभु से प्यार जताना सच्चा है, तो हमें उसकी बनाई हुई सृष्टि के जीवों से भी प्यार करना चाहिए क्योंकि प्रभु और उसकी रचना– दोनों एक ही हैं। इसलिए हम एक से प्यार और दूसरे से घृणा नहीं कर सकते। सब महात्माओं और ऋषि–मुनियों के जीवन में 'मानव–प्रेम' का यही आधारभूत नियम काम करता दिखाई देता है। उनको इस बात से अन्तर नहीं पड़ता कि कोई व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास करता है या नहीं– उनके लिए आस्तिक और नास्तिक– दोनों एक समान हैं। उनका विश्वास होता है कि संसार प्रभु का एक विशाल परिवार है और हम सब उस परिवार के सदस्य हैं। कोई अमीर हो चाहे ग़रीब, बड़ा हो चाहे छोटा– वे जीवन के दिखने वाले व्यर्थ अंतरों के बावजूद सबसे एक–सा प्यार करते हैं।

परन्तु वास्तव में हमें संसार में क्या दिखाई देता है? सब धर्मों के मूल में काम करने वाले मूल सत्य– प्रेम को भुला कर, हम उस परम शक्ति रूपी लंगर से जुदा होकर भवसागर में बिन पतवार बहे जा रहे हैं। हममें से हर कोई तिनके को पकड़ कर अपने आपको बचाने की कोशिश

करता है। हम कहाँ से आए हैं, हमें कहाँ जाना है, यह मानव—जीवन की एक बड़ी पहेली है। हम भाग्य, हवा, पानी आदि से कुछ हद तक संघर्ष करते हैं, परन्तु इस पहेली को सुलझा नहीं पाते और अंत में भवसागर में डूब जाते हैं।

सच्चा और एकमात्र धर्म 'प्रेम' है। सेंट पॉल ने कहा है :

प्रेम द्वारा एक दूसरे की सेवा करो।

— पवित्र बाइबिल (गलातियों 5:13)

ले हंट ने कहा है :

जो अपने साथियों की सेवा करता है, वह प्रभु से प्यार करता है और प्रभु का प्यारा होता है।

इसी प्रकार, सैमुएल टेलर कोलरिज ने अपनी प्रसिद्ध कविता, 'Rhyme of the Ancient Mariner' में कहा है :

उसकी प्रार्थना सबसे अच्छी होती है, जो सबसे अधिक प्रेम करता है, सब छोटी और बड़ी वस्तुओं से। क्योंकि प्यारा ईश्वर, जो हमें प्यार करता है, उसी ने सबको बनाया और प्यार किया।

सेंट जॉन ने कहा है :

जो प्रेम नहीं करता, वह परमेश्वर को नहीं जानता क्योंकि परमेश्वर प्रेम है।

— पवित्र बाइबिल (I यूहन्ना 4:8)

शांति के दूत, क्राइस्ट ने भी ज़ोर देकर जीवन के मुख्य सिद्धांत को इस प्रकार बताया है :

अपने पड़ोसी से भी उतना ही प्यार करो, जितना तुम अपने आप से करते हो।

— पवित्र बाइबिल (यथा, मत्ती 22:39)

फिर वे ज़ोरदार शब्दों में कहते हैं :

प्यार करो, और तुम्हें सब बरकतें मिल जायेंगी।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 6:33)

मुसलमान फ़क़ीर शेख़ सा'दी ने भी यही कहा है :

चू उज़्वे ब-दर्द आवरद रोज़गार,
दिगर उज़्व-हा रा नमानद क़रार।

– शेख़ सादी, गुलिस्तान (पृ॰42)

अर्थात् जिस प्रकार शरीर के अंग एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं, उसी प्रकार परमात्मा के बच्चे उसके साथ जुड़े हुए हैं। वे एक ही सार–तत्त्व से पैदा हुए हैं। यदि उनमें से एक भी पीड़ित हो जाए, तो दूसरे भी बेचैन हो उठते हैं।

शेख़ फ़रीद और दूसरे संतों ने भी इसी सच्चाई को दोहराया है कि यदि तुझे प्रीतम से मिलने की चाह है, तो किसी का दिल न दुखा :

जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा।।

– आदि ग्रंथ (सलोक सेख फ़रीद, पृ॰1384)

दशम गुरु, गोबिन्दसिंह जी ने भी कहा है :

साचु कहों सुन लेहु सभै
जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।।

– दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ॰14)

परमात्मा प्रेम रूप है, हमारी आत्मा भी उसी की अंश है, इसलिए यह भी प्रेम–स्वरूप है और परमात्मा को प्राप्त करने का रास्ता भी प्रेम ही है।

भाई नन्द लाल ने कहा है :

खलक खलक की जान कै, खलक दुखावे नाहि।
खलक दुखहि नन्द लाल जी, खालक कोपहि ताहि।।

– रहतनामे (पृ॰59)

अर्थात् प्रभु और उनकी बनाई हुई सृष्टि में कोई भेद नहीं। अतः सृष्टि के किसी भी प्राणी को चोट मत पहुँचाओ, नहीं तो तुम प्रभु के क्रोध के पात्र बनोगे।

सभी पवित्र और धर्मनिष्ठ भक्तजनों का धर्म एक ही होता है– प्रभु व उसकी सृष्टि से प्रेम करना। यदि मनुष्य के अन्दर अपने साथियों के प्रति प्यार की भावना नहीं और वह उनके सुख–दुख में शरीक़ नहीं होता

तथा उनकी मुसीबतों में सहायता का हाथ नहीं बढ़ाता, तो वह पशु के समान है। यदि प्राणियों के प्रति सहानुभूति के स्थान पर हम दूसरों का बुरा चिन्तन करते हैं और हममें घृणा, ईर्ष्या, शत्रुता, लालच, स्वार्थ, अभिमान और पक्षपात की भावना भरी पड़ी है, तो इस मैल के कारण हमारे हृदय के शीशे में प्रभु की झलक नहीं दिख सकती और न ही हमें सच्ची ख़ुशी और शांति मिल सकती है।

मनुष्य सृष्टि का सिरमौर है, जिसमें प्रभु की आत्मा बसती है। जितना अधिक वह उसकी सृष्टि से प्यार करते है, उतना ही वह उसके निकट पहुँच जाता है। संपूर्ण चराचर जगत उसी का इज़हार है और एसकी आत्मा हर रूप और रंग में मौजूद है। सब रंग उसी से रंगत हासिल करते हैं। वह सर्वव्यापी है और सब जगह उसी का प्रकाश काम कर रहा है। कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ वह न हो।

एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे।।

– आदि ग्रंथ (बिभास प्रभाती कबीर, पृ॰1349)

खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ सब ठांई।।

– आदि ग्रंथ (बिभास प्रभाती कबीर, पृ॰1350)

बाहरी शक्लें, रहन–सहन, खान–पान, रस्मों–रिवाज़– ये सब अलग–अलग हो सकते हैं, परन्तु आत्मा के अन्तःस्थित शक्ति पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मनुष्य जब देहाध्यास से ऊपर उठ कर आंतरिक मंडल में प्रवेश करता है, तो ये सभी बाहरी भेद–भाव समाप्त हो जाते हैं। क्राइस्ट ने भी सदा सिखाया है :

प्रभु को अपने दिल, दिमाग़ और आत्मा से प्यार करो। अपने पड़ोसी से भी उतना ही प्यार करो, जितना तुम अपने आप से करते हो। अपने शत्रुओं से प्यार करो और अपने सताने वालों के लिए प्रार्थना करो, जिससे तुम अपने स्वर्गस्थित पिता की संतान ठहरोगे। तुम अपने आपको उसी तरह पूर्ण बनाओ, जिस तरह स्वर्ग में बैठा तुम्हारा पिता पूर्ण है।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:44-48)

वास्तव में यही सच्चा मार्ग, सच्ची भक्ति और सच्ची साधना है।

मनुष्य का हृदय ही परमात्मा का निवास स्थान है। यह मनुष्य को परमात्मा द्वारा अमानत के रूप में सौंपा गया है। इसलिए इसे साफ़–सुथरा रखना चाहिए, तभी उसमें प्रभु की ज्योति प्रकट हो सकती है और इंसान का जीवन धन्य हो सकता है। यह शरीर ही हरि–मन्दिर है, जिसमें सत्य की ज्योति जग रही है। कितने खेद की बात है कि हम मनुष्य के बनाए हुए मन्दिरों को साफ़–सुथरा रखते हैं, परन्तु परमात्मा के बनाए हुए शरीर रूपी पवित्र मन्दिर की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देते।

संपूर्ण चराचर जगत की रचना का सिद्धांत एक ही है। सभी ईश्वर की ज्योति से उत्पन्न हुए हैं और वही ज्योति सबमें जगमगा रही है। अतः उसका कोई भी जीव 'बुरा' नहीं कहा जा सकता। थॉमस–ए–कैम्पिस ने पुस्तक, 'The Imitation of Christ' में लिखा है :

एक शब्द से ही संपूर्ण वस्तुएँ बनी हैं, और सभी वस्तुएँ उसी का वर्णन करती हैं।

हिन्दू ग्रंथ इस सृजनात्मक सत्ता को 'नाद' कहते हैं, मुसलमान 'कलमा' और सिक्ख 'नाम' कहते हैं। वेद में कहा है :

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

– ऋग्वेद (1.164.46)

अर्थात् 'सत्' एक है, पर महात्माओं ने भिन्न–भिन्न प्रकार से इसका वर्णन किया है।

शेख़ सा'दी कहते हैं :

तरीक़त बजुज़ ख़िदमते-ख़ल्क़ नीस्त,
ब-तस्बीह ओ सज्जादा ओ दल्क़ नीस्त।

– बोस्तान (पृ॰40)

अर्थात् मानव सेवा से बढ़कर कोई धर्म नहीं। माला फेरना, आसन जमाना तथा गुदड़े पहनना किसी गिनती में नहीं आता।

सब घट मेरे सांइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सेवक और दास का अंग 27, पृ.20)

अर्थात् सबके अन्दर मेरा सांईं है, कोई हृदय उससे खाली नहीं। वास्तव में वे हृदय धन्य हैं, जिनमें प्रभु प्रकट होता है।

कअबा बुंगाहे-ख़लीले-आज़र अस्त,
दिल गुज़रगाहे-जलीले-अकबर अस्त।
दिल बदस्त आवर किह् हज्जे-अकबर अस्त,
अज़ हज़ारां कअबा यक़ दिल बिहतर अस्त।

— मौलाना रूमी

अर्थात् तू ज़िन्दा दिलों की परिक्रमा कर, क्योंकि दिल हज़ारों काबों से बेहतर है। का'बा तो हज़रत इब्राहीम के पिता का बुतख़ाना (मन्दिर) था, पर यह हृदय प्रभु के रहने का स्थान है।

दिला तवाफ़े दिलाँ कुन किह् का'बा मख्फ़ी अस्त,
किह् आं ख़लील बना कर्द व ईं ख़ुदा ख़ुद साख़्त।

— मौलाना रूम

अर्थात् हे इंसान! यह दिल छिपा हुआ का'बा है। तू इसकी परिक्रमा कर। का'बा तो हज़रत इब्राहीम ने बनाया था, परन्तु यह दिल प्रभु ने स्वयं बनाया है।

सूफ़ी मग़रबी साहिब ने भी फ़रमाया है :

हज़ार जुहदो इबादत्त हज़ार इस्तग़फ़ार,
हज़ार रोज़ा हर रोज़ा रा नमाज़ हज़ार।
हज़ार ताअते-शब-हा हज़ार बेदारी,
क़बूल नीस्त अगर ख़ातरे ब्याज़ारी।

अर्थात् हज़ारों बार कठोर इबादत (तपस्या) करना, रोज़े (व्रत) रखना, श्रद्धापूर्वक हज़ारों नमाज़ पढ़ना, रात्रि में जागरण करना आदि सब किसी भी काम के नहीं, यदि तुमने किसी एक का भी दिल दुखाया है।

हाफ़िज़ साहिब चेतावनी देते हैं :

मै ख़ुर ओ मुसहफ़ बसोज़ ओ आतिश अंदर क़अबा ज़न,
साक़िने-बुतख़ाना बाश ओ मुर्दम आज़ारी मकुन।

अर्थात् अगर तुम चाहते हो, तो ख़ूब शराब पीयो, कुरान–शरीफ़ को जला डालो, यहाँ तक कि अगर तुम चाहो, तो मुकद्दस (पवित्र) का'बा को भी आग लगा दो, लेकिन किसी का दिल न दुखाओ।

शराब पीना आदि ऊपर कही हुई बातें पाप गिनी जाती हैं, परन्तु हाफ़िज़ साहिब कहते हैं कि यह सब करना अधिक अच्छा है, बजाय इसके कि किसी का दिल दुखाया जाए। किसी का दिल दुखाना सबसे ज़्यादा बुरा काम है।

मुसलमान सूफ़ी शेख़ सादी ने कहा है :

हासिल न-शवद तुरा रज़ा-ए सुलतान,
ता ख़ातिरे बन्दगां न जूई।
ख़्वाही किह् ख़ुदाए बर तू बख़्शद,
बा ख़ल्के-ख़ुदाए ब-कुन निकूई।

— गुलिस्तान (पृ.58)

अर्थात् जब तक तू ख़ुदा के बंदों की दिलजोई (अच्छा व्यवहार) नहीं करेगा, तब तक तुझे ख़ुदा की रज़ा (इच्छा) हासिल नहीं होगी। अगर तू चाहता है कि ख़ुदा तेरे ऊपर मेहरबानी करे, तो तू उसकी सृष्टि के साथ भलाई कर।

1. प्रभु ने सब लोगों को एक जैसे अधिकार दिए हैं :

संसार में सब की उत्पत्ति एक ही तरह से होती है– चाहे कोई अमीर हो या ग़रीब, उच्च हो या नीच या किसी भी जाति वर्ण या धर्म से संबंध रखता हो। हर एक माता–पिता के रज और वीर्य से उत्पन्न होता है और माता के पेट में नियत समय पूरा करके जन्म लेता है। इसलिए यह ऊँच–नीच का भेदभाव किस बात का?

अपने आपको उच्च जाति का समझने वाले एक घमंडी पंडित से कबीर साहिब ने कहा :

जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ।। तउ आन बाट काहे नही आइआ।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी कबीर, पृ॰324)

अर्थात् यदि तुम यह समझते हो कि तुम्हारी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है, तो तुम इस संसार में अन्य तरह से पैदा क्यों नहीं हुए? बाक़ी लोगों की भाँति माता के गर्भ से तुम्हारी पैदाइश क्यों हुई?

सभी लोगों में– चाहे वे पूर्व में पैदा हुए हैं, चाहे पश्चिम में– बहुत शारीरिक समानता पाई जाती है। प्रत्येक जाति के मनुष्यों को भगवान से एक जैसे अंग और इंद्रियाँ मिली हैं। बाहरी बनावट सबकी एक जैसी है; सबके मन की प्रवृत्ति भी एक जैसी है; ऋतुओं का प्रभाव भी सब पर समान रूप से पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से प्रकृति की देनों का उपभोग करता है– वह बिना किसी भेद–भाव के सबको वायु, जल और भोजन आदि देती है।

संपूर्ण सृष्टि में हर तरह से समानता पाई जाती है। सभी व्यक्तियों का शरीर– चाहे वे किसी जाति अथवा वर्ग के हों– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पाँच तत्त्वों से बना है। सब एक ही पृथ्वी के ऊपर और एक ही नीले आकाश के नीचे रहते हैं। रोग, क्षय और मृत्यु सबको समान रूप से आते हैं। समय की धारा से कोई भी बच नहीं सकता। इसलिए प्रत्येक अवस्था में इलाज भी रहता है। ईश्वर ने मनुष्य–मनुष्य में कोई अन्तर नहीं रखा। जाति, रंग, धर्म आदि के सभी भेदभावों के लिए मनुष्य ही उत्तरदायी है। उसी ने मानव जाति को संकुचित वर्गों में बाँट रखा है।

2. धार्मिक मतभेद - उनके कारण और स्वरूप :

सब धार्मिक भेदभाव मनुष्य के बनाए हुए हैं। ये उसी की तंगदिली और कट्टरता के परिणाम हैं।

महात्माओं और ऋषि–मुनियों ने संपूर्ण संसार के लिए एक ही संदेश दिया है। उनका संदेश है– 'विश्व–प्रेम', अर्थात् "संसार में सबसे प्यार करो।" कोई भी व्यक्ति तब तक प्रभु का प्यारा नहीं हो सकता, जब तक कि वह यह नहीं जानता कि अपने साथियों के साथ कैसे प्यार किया जाता है। जिस प्रकार शारीरिक रोग शरीर को बेकार कर देते हैं, उसी प्रकार मानसिक बीमारियाँ भी मनुष्य के नाश का कारण बन जाती हैं। वे अन्तर विष का काम करती हैं और परिणाम यह निकलता है कि मनुष्य के अन्दर लालच, स्वार्थ, घृणा, बुराई और शत्रुता पैदा हो जाते हैं और वह बुरे काम करने को तैयार हो जाता है। वह पशु–तुल्य बन जाता है– यहाँ तक कि कई बार वह पशुओं से भी अधिक नीचता पर उतर आता

है। प्रायः इसका परिणाम यह होता है कि वह सामाजिक और आर्थिक रूप से बिखर जाता है।

जब–जब महापुरुष इस संसार में आए, उन्होंने हमें बताया कि सब धार्मिक मतभेदों का कारण है– अज्ञानता, व्यक्तिगत सनक, धार्मिक अभिमान या आध्यात्मिक 'अहम्' (अर्थात् यह समझना कि हमारे इष्टदेव ही सबसे बड़े हैं।) प्रत्येक धर्म के तथाकथित नेता भ्रमों और संकीर्णता से ग्रस्त हैं। स्वार्थवश वे अपने चारों ओर पक्षपात–रहित दृष्टि से नहीं देख पाते। इसके विपरीत, वे संसार को धुंधले रंग के चश्मे से देखते हैं, जो उन्होंने अपने लिए बनाया है। उनमें इतनी सहनशक्ति नहीं कि जो वस्तुएँ उनके अपने धर्म, सम्प्रदाय या धार्मिक आदेशों के अनुकूल नहीं, उनको वे सहन कर सकें।

संपूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधने वाला धर्म एक ही है। वह है 'प्रेम' का धर्म। इस धर्म का आधार है कि हम सब एक ही प्रभु के बच्चे हैं और आपस में भाई–भाई हैं। हम लोगों में जो धार्मिक तंगदिली और साम्प्रदायिकता आ गई है, उसको पैदा करने वाले हम ही हैं। उसका कारण है हमारा स्वार्थ, तुच्छ पूर्वधारणाएँ और धुंधला विवेक। हमने अपने चारों ओर घृणा व प्रतिरोध की बाड़ें और दीवारें बना ली हैं, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य मनुष्य से, वर्ग वर्ग से और देश देश से अलग हो गया है। इस प्रसंग में महान मुसलमान फ़क़ीर, हाफ़िज़ साहिब ने अपने दीवान में कहा है :

यक हक़ीक़त जल्वागर दर कुफ़्र ओ इस्लामस्त ओ बस,
इख़्तिलाफ़ाते-मज़ाहब जुमला औहाम अस्त ओ बस।
अज़ तअस्सुब कासा-ए-शेख़-ओ-ब्रहमन शुद जुदा,
वर्ना दरे-मयख़ाना यक़ साक़ी ओ यक़ जाम अस्त ओ बस।

अर्थात् इस्लाम (धर्म) और कुफ़्र (विधर्म), दोनों में सत्य एक ही है। भेद–भाव केवल भ्रम के कारण हैं– और कुछ नहीं। पक्षपात और तंगदिली के कारण ही ब्राह्मण और शेख़ का प्याला जुदा–जुदा है। नहीं तो, परमार्थ के शराबख़ाने में एक ही साक़ी (सत्गुरु) से 'नाम' की मदिरा मिलती है और जाम (प्याला) भी एक ही है।

प्रभु संपूर्ण सृष्टि का बनाने वाला है, किसी एक या दूसरे धर्म का नहीं। वास्तव में हिन्दुओं के 'कर्त्ता–करतार' (ईश्वर) और मुसलमानों के 'करीम' में कोई अन्तर नहीं। 'राम' (हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले) और 'रहीम' (मुसलमानों के लिए दया करने वाले) में कोई अन्तर नहीं। ये सब सभी नाम ईश्वर की महिमा या उसका वर्णन करने के लिए हैं। ये अलग अलग सम्प्रदायों के महात्माओं, साधुओं, ऋषियों, मुनियों के द्वारा उनकी अपनी–अपनी भाषा में बनाए गए। अनाम सत् एक है, परन्तु सब अपने–अपने ढंग से उसे बुलाते हैं या याद करते हैं। जिस किसी भी नाम से उसे याद करो, वह उत्तर देता है।

बलिहारी जाऊ जेते तेरे नाव है।।

– आदि ग्रंथ (बसंत म॰1, पृ॰1168)

मौलाना रूम ने फ़रमाया है :

बनामे ऊ किह् ऊ नामे नदारद,
बहर नामे किह् ख़्वानी सर बर आरद।

अर्थात् उस अनाम के बहुत से नाम हैं। जिस भी नाम से उसे पुकारो, वह ज़रूर आता है।

हर एक को चाहिए कि वह संदेहों व भ्रमों के ख़तरों से बचे। केवल प्रभु की सच्चे दिल से पूजा और अर्चना करनी चाहिए। वह सबका ईश्वर है और सब उसी के रूप हैं। सबके अन्तर एक ही ज्योति काम कर रही है और हर कोई उसी के प्रकाश से प्रज्ज्वलित हो रहा है। संपूर्ण मनुष्य जाति एक ही है। इस संदर्भ में गुरु गोबिन्द सिंह जी कहते हैं :

कोऊ भइयो मुंडीयां संन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनुमानबो।
हिन्दू तुरक कोऊ राफ़ज़ी इमाम साफ़ी,
मानस की जात सभै एकै पहिचानबो।
करता करीम सोई, राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई, भूल भ्रम मानबो।।

एक ही की सेव सब ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो।।

– दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ॰19)

अर्थात् कुछ लोग जटाएँ धारण कर लेते हैं, कुछ भगवे वस्त्र पहन लेते हैं और कुछ अपने आपको जोगी कहते हैं (जोगी एक जाति विशेष है, जो अपने कानों में लकड़ी की बालियाँ पहनते हैं और स्थान–स्थान पर घूमते फिरते हैं)। कुछ लोग ईश्वर की खोज के लिए अविवाहित रहते हैं। कुछ कठोर तपस्या का जीवन अपनाते हैं। कोई हिन्दू हैं, कोई तुर्क, कोई इमाम हैं, कोई अन्य महात्माओं के अनुयायी। इन सबमें नाम का अन्तर है, मूल में सब एक ही हैं। वे सब मनुष्य हैं। मनुष्य को परमात्मा ने ही बनाया है और उसी में वह समाएगा भी। उस परमात्मा को चाहे सृष्टि का रचने वाला कहो, दयावान कहो या रहीम कहो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस बात को चिरन्तन सत्य समझो और नामों के चक्कर में पड़कर मत घूमो। इन सबके द्वारा पूजा उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की ही होती है और ये सब नाम भी उसी के हैं और उसी ईश्वर के रूप को प्रकट करते हैं तथा उसी के प्यार और नूर से चल रहे हैं। उस प्रभु के कई नाम हैं, फिर भी वह अनाम है। किसी भी नाम से पुकारो, वह अवश्य सुनेगा।

3. प्रभु की याद :

प्रभु को याद करना वह मुख्य तरीक़ा है, जिसके द्वारा उसके दर तक वापस पहुँचा जा सकता है। भक्ति–भाव से किए गए कार्यों, पूजा–स्थलों और तीर्थ–यात्राओं, सभी का उद्देश्य एक ही है– प्रभु की याद। यह मानव शरीर ही हरि–मन्दिर है, यही सबसे बड़ा तीर्थ है।

विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में भक्ति की अलग–अलग पद्धतियाँ (तरीक़े) बताई गई हैं, परन्तु उद्देश्य सबका एक ही है– किस प्रकार ईश्वर से प्रेम किया जाए और किस प्रकार उसे जाना जाए। उनके विभिन्न लेखकों ने अपने–अपने समय और युग में अपने–अपने तरीक़े से ईश्वर की ओर जाने का मार्ग बताया। इसकी उपमा तीरन्दाज़ी के खेल से दी जा सकती है, जिसमें अनेक तीरन्दाज़ भाग लेते हैं, परन्तु सबका निशाना एक ही होता है। एक महात्मा, रज्जब ने कहा है :

अपणे अपणे मीत की, सभी मनाएं टेक।
रज्जब निशाना एक है, तीरन्दाज़ अनेक।

कुरान शरीफ़ (सुरत नहल– 5वें रकु) में कहा गया है कि समय–समय पर ख़ुदा द्वारा भेजे गए पैग़म्बरों–महात्माओं ने अलग–अलग कर्मकांड और उपासना की विधियाँ रचीं, जो कि उनके ज़माने की ज़रूरतों के अनुसार थीं। सूफ़ी उमर ख़ैय्याम ने, जो कि फ़ारसी के एक महान कवि हुए हैं, कहा है :

मेहराबो कलीसा व तस्बीहो सलीब,
हक़्क़ा कि हमा निशानाए बन्दगी अस्त।
बुतख़ाना व काबा ख़ानाए बन्दगी अस्त,
नाक़ूस ज़दन तरानाए ज़िन्दगी अस्त।

अर्थात् मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर और सिनेगॉग (यहूदियों का पूजा–स्थान) ईश्वर की पूजा के लिए एक जैसे हैं। शंख और घंटे का वहाँ बजाना जीवन के गुप्त संगीत का प्रतीक है। मेहराब मस्जिदों में, क्रॉस गिरजों में, दीपक मन्दिरों में और लैम्प सिनेगॉग में– ये सब प्रभु प्रियतम की आराधना के लिए भिन्न–भिन्न चिन्हमात्र हैं।

ईश्वर को अपने से बाहर, कहीं नहीं ढूँढ़ा जा सकता। वह धर्मस्थानों में भी नहीं मिल सकता, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों। उसको जानने के लिए मनुष्य को मानव शरीर रूपी प्रयोगशाला में दाख़िल होना पड़ता है, जो कि सच्चा हरि–मन्दिर है। सच्ची पूजा और भक्ति अन्तर्मन की स्वतन्त्र वस्तु है, जिसका शरीर से या बाहर की किसी वस्तु से कोई संबंध नहीं। जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह है मन की पवित्रता। नेक–पाक–सदाचारी जीवन व्यतीत करता हुआ मनुष्य नीले आकाश के नीचे कहीं भी ईश्वर की पूजा कर सकता है क्योंकि यह संपूर्ण संसार ही प्रभु का विशाल मन्दिर है। कोई भी स्थान (जिसमें मन्दिर–मस्जिद आदि भी सम्मिलित हैं) ऐसा नहीं है, जहाँ वह न हो। वास्तव में, जहाँ भी नम्रतापूर्वक भक्ति की जाती है, वही धर्मस्थान बन जाता है। कुरान शरीफ़ में कहा गया है :

अल्लाह की ही मिल्कियत है, मशरिक (पूर्व) में चाहे मग़रिब (पश्चिम) में, जिस तरफ़ भी रुख़ (मुख) करो, उधर ही अल्लाह का रुख़ है, क्योंकि अल्लाहताला हरजाई (सर्वव्यापी) और हमादान (सर्वज्ञ) है।

– कुरान शरीफ़ (2.115)

आगे कहा :

अज्ञानता के कारण लोग समझते हैं कि ईश्वर मनुष्य के बनाए हुए मस्जिदों, मन्दिरों या गिरजों में रहता है, परन्तु वास्तव में जागृत पुरुष उसको अपने अन्तर में देख सकता है। ईश्वर ने मानव शरीर को ही अपना मन्दिर बनाया है।

– कुरान शरीफ़ (2.114)

अल–निसाई साहिब ने भी फ़रमाया है :

मेरे लिए सारी ज़मीन मस्जिद की तरह पाक (पवित्र) है। जहाँ कहीं भी मेरे अनुयायी को नमाज़ का वक़्त आ जाए, वह वहीं नमाज़ अदा कर ले।

जहाँ कहीं भी श्रद्धा और भक्ति के साथ प्रभु के आगे झुक जाओ, वही पवित्र स्थान है।

– ऑलिवर वेन्डेल होम्स, ज्येष्ठ [Oliver Wendell Holmes, Sr.]

सूफ़ी बू–अली शाह क़लन्दर फ़रमाते हैं कि प्रीतम तेरी बग़ल में है। तम क्यों उससे बेख़बर है? वह तेरे अन्दर है, पर तू दर–ब–दर भटक रहा है।

यार दर तू पस चिरा ऐ बे-ख़बर,
यार दर ख़ुद तू चिह् गर्दी दर ब-दर।

– मसनवी बू–अली शाह क़लन्दर (पृ.25)

जिसको हमें सिजदा करना है, जब वह हमारे अन्दर है, तो मस्जिद में जाने का काम बेकारी से बेहतर नहीं :

गर बवद मसजूद अन्दर दिल ओ मा मसजिद रवेम,
बिहतर अज़ बेकारी ईं हरगिज़ न बाशद कारे-मा।

– दीवाने बू–अली शाह क़लन्दर (पृ.9)

अब्लहाँ ताज़ीमे-मसजिद मी कुनन्द,
दर सफ़ाई अहले-दिल जिद्द मी कुनन्द।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ्तर 2, पृ.293)

अर्थात् प्रीतम तेरी बग़ल (कक्ष) में है, तू क्यों उससे बेख़बर है? वह तो तेरे अन्तर है और तू दर–ब–दर (द्वार–द्वार) फिर रहा है। अगर वह प्रभु जिसे हमने सिजदा करना है, हमारे अन्तर में है और हम मस्जिदों में भटकते फिरें, तो हमारा यह काम बेकारी से बेहतर नहीं। नासमझ लोग मस्जिदों या धर्मस्थानों की पूजा करते है और सच्चे प्रभुभक्त अपने हृदय के मन्दिर की सफ़ाई के लिए प्रयत्न करते हैं, जो प्रभु का सिंहासन है।

सच्चा का'बा या पूजा का स्थान सत्गुरु है, जिसके व्यक्तित्व में प्रभु की ज्योति चमकती है। तुलसी साहिब कहते हैं :

नक़ली मंदिर मस्जिदों में जाय सद अफ़सोस है।
कुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये।

कबीर साहिब ने भी ऐसा ही कहा है :

कबीर हज काबे हउ जाइ था आगै मिलिआ खुदाइ।
सांईं मुझ सिउ लरि परिआ तुझै किन्हि फुरमाई गाइ।

– आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ॰1375)

गुरु अमरदास जी ने भी कहा है :

हरि मंदरु एहु सरीरु है गिआनि रतनि परगटु होइ।।

– आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰3, पृ॰1346)

क्राइस्ट ने भी कहा है :

क्या तुम नहीं जानते कि तुम हरि–मन्दिर हो तथा प्रभु की आत्मा तुम में ही वास करती है? तुम ही जीवित प्रभु के मन्दिर हो।

– पवित्र बाइबिल (I कुरिन्थियों 3:16); (II कुरिन्थियों 6:16)

शीराज़ के हाफ़िज़ साहिब भी फ़रमाते हैं कि,

गरज़ ज़ मस्जिदो मैख़ाना अम वसाले-शुमा अस्त,
जुज़ ईं ख़याल न दारम ख़ुदा गवाहे-मन अस्त।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.99)

(हे ख़ुदा! मस्जिदों या धर्म–स्थानों में मेरा जाना केवल तेरा मिलाप पाने के लिए है, इसके अलावा और कोई प्रयोजन नहीं।)

वे आगे कहते हैं :

हर्गिज़ मगो कि कअबा ज़ बुतख़ाना बिहतर अस्त,
हर जा कि अस्त जल्वाए-जानाना ख़ुश्तर अस्त।

अर्थात् यह मत कहो कि का'बा बुतख़ाने से बेहतर है। असल में वही जगह अच्छी है, जहाँ पर ख़ुदा का जलवा देखा जा सके।

दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इसी बात को स्पष्टतया ऐसे कहा है :

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।।
देवता अदेव ज्छ गंधर्व तुरक हिंदु
निआरे निआरे देसन को भेस को प्रभाउ है।।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान
खाक बाद आतिस औ आब को रलाउ है।।
अलह अभेख सोई पुरान अउ कुरान ओही
एक ही सरूप सभै एक ही बनाउ है।।

— दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ.19)

वास्तव में पृथ्वी पर मौजूद सभी धर्म वाले उसी एक सत्य के विषय में बतलाते हैं। सब धर्मपुस्तकें हमें बताती हैं कि बाहरी दुनिया में प्रभु की खोज करने का कोई प्रयोजन नहीं और किसी सत्स्वरूप गुरु की कृपा से ही प्रभु को अन्तर में प्रकट किया जा सकता है। सभी पूजा के स्थान, चाहे वे कहीं भी हों, मिट्टी और पानी से बने हैं। जब ईश्वर सर्वव्यापी है, तो उसे मन्दिरों और मस्जिदों में ढूँढ़ने की आवश्यकता ही क्या है? वह हमारे अन्तर में है, बल्कि वह हमारी आत्मा की आत्मा

है और हमारा जीवन–आधार है। परन्तु यह सच्चाई तभी प्रकट होती है, जब हम संत–सत्गुरु की शरण में जाते हैं और उसकी दया से स्वयं वास्तविक अनुभव प्राप्त करते हैं।

कत जाईऐ रे घर लागे रंगु। मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु।।
एक दिवस मन भई उमंग। घिसि चन्दन चोआ बहु सुगंध।।
पूजन चाली ब्रह्म ठाइ।। सो ब्रह्मु बताइओ गुर मन ही माहि।।
जहा जाईऐ तह जल पखान। तू पूरि रहिओ है सभ समान।।
बेद पुरान सब देखे जोइ। ऊहाँ तउ जाईऐ जउ ईहाँ न होइ।।
सतिगुरु मैं बलिहारी तोर। जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर।।
रामानंद सुआमी रमत ब्रह्म। गुर का सबदु काटै कोटि करम।।

– आदि ग्रंथ (बसंत भगत रामानन्द, पृ॰1195)

गुरु अर्जन साहिब ने कहा है :

कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ।। कोई सेवै गुसईआ कोई अलाहि।।
कारण-करण करीम।। किरपाधारि रहीम ।।
कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ। कोई करे पूजा कोई सिरु निवाइ ।।
कोई पड़ै बेद कोई कतेब।। कोई ओढै नील कोई सुपेद ।।
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिंदू।। कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिंदू ।।
कहु नानक जिनि हुकमु पछाता।। प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाता ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰885)

हिन्दूओं के धर्मग्रंथ संस्कृत या हिन्दी में हैं, मुसलमानों के अरबी या फ़ारसी में हैं। सिक्खों का गुरुग्रंथ साहिब पंजाबी में है। ईसाइयों की बाइबिल यहूदी, यूनानी, लातीनी और अंग्रेज़ी भाषाओं में है। इनकी भिन्न–भिन्न व्याख्याएँ और टीकाएँ उन भाषाओं में हैं, जो कि उस समय की जनसाधारण की भाषा रही हैं। इन सब ग्रंथों का (चाहे वे किसी भी भाषा में क्यों न हों) एक ही उद्देश्य रहा है और वह है– मनुष्य में ईश्वर के प्रति जिज्ञासा, चाह, उत्सुकता और प्रेम उत्पन्न करना। ये सब साधन हैं, साध्य नहीं, क्योंकि ईश्वर एक ऐसा कानून है, जो लिखने में नहीं आता और उसकी भाषा बोलने में नहीं आती। वह सबकी वाणियों से परे है, क्योंकि कोई भी उस तक पहुँच नहीं सकती। किसी भी ज़ुबान में

कोई विशेष गुण नहीं क्योंकि वह तो व्यक्त करने का एक साधन मात्र हैं, ताकि उनसे प्रभु की प्रेम भरी गाथाएँ गाई और सुनी जा सकें। हाफ़िज़ साहिब बड़े सुन्दर ढंग से कहते हैं :

यके अस्त तुर्की व ताज़ी दरीं मुआमला हाफ़िज़,
हदीसे-इश्क़ बयाँ कुन बे-हर ज़बां किह् तू दानी।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.423)

अर्थात् हे हाफ़िज़! प्यार के मामले में तुर्की, अरबी या किसी और ज़ुबान में कोई फ़र्क नहीं। प्रेम की कहानियाँ किसी भी ज़ुबान में, जो तुम्हें आती है, कही जा सकती हैं।

अलग–अलग देशों के अलग–अलग लोग इस प्रकार हैं, जिस प्रकार एक ही पिता के बहुत से पुत्र या एक ही बाग़ के बहुत से फूल। उनके रंग या उनकी सुगंध चाहे अलग–अलग हो। उसी प्रकृति की गोद में और उसी नीले आकाश के नीचे रह कर भी हमने तुच्छ विचारों से अपने आपको तंगदिल बना लिया है तथा हमारी दृष्टि भी बड़ी संकुचित हो कर विभिन्न धर्मों और संप्रदायों तक ही सीमित रह गई है। 'Religion' ('धर्म') का शब्दार्थ है : 'प्रभु के घर लौटने का रास्ता या उस महान स्त्रोत से जुड़ जाना।' हमें मुक्त कराने के स्थान पर धर्म ने हमें अपने एक मज़बूत गिरफ़्त में फँसा लिया है, जिससे बचकर निकल पाना कठिन है।

हमारी हालत तो यह हो गई है, "मैं तो कम्बल को छोड़ता हूँ, परन्तु कम्बल मुझे नहीं छोड़ता।" इसी बात की कहानी आती है कि एक बार एक रीछ नदी में तैरता जा रहा था। एक आदमी किनारे खड़ा था। उसने समझा कि कम्बल बहकर जा रहा है। वह उसे प्राप्त करने के लिए फ़ौरन पानी में कूद पड़ा। परन्तु जब उसने उस पर हाथ डाला, तो उसे अपनी ग़लती का पता लगा और जब उसने वापस भागने का प्रयत्न किया, तो असफल रहा क्योंकि रीछ ने उसे अपने पंजे में क़ाबू कर लिया था और निकलने नहीं देता था। जो लोग नदी के किनारे खड़े थे, उन्होंने कहा, "भाई, लौट जाओ!" तो उसने उत्तर दिया, "मैं तो वापस आना चाहता हूँ, पर यह कम्बल (रीछ) मुझे आने नहीं देता।" आजकल हम सबकी यही

दशा हो गई है। जागृत पुरुष धर्म के इस संकुचित रूप को देखकर घृणित होते हैं। जब मन्दिर और मस्जिद दोनों ही प्रभु के स्थान हैं और उसी प्रभु की ज्योति वहाँ जगमगा रही है, तो उनमें इतना भेदभाव क्यों समझा जाए?

आराधना के लिए चाहे मस्जिद हो, चाहे मन्दिर, चाहे कोई अन्य धार्मिक स्थान, उद्देश्य तो सबका एक ही है और वह है– प्रभु की प्राप्ति। बाहरी रूप व रंग और शक्ल में अलग–अलग होने पर भी जब दो पत्थर आपस में रगड़े जाते हैं, तो उनसे पैदा होने वाली आग के रंग में कोई अन्तर नहीं होता। परन्तु कितने अचरज की बात है कि दो भिन्न–भिन्न तरीक़ों से पूजा करने वाले भक्त वही परिणाम लाने में असफल रह जाते हैं, बल्कि आपस में लड़–लड़कर मरते रहते हैं। इसका कारण केवल यह है कि दोनों में से एक ने भी सच्ची पूजा को नहीं समझा। सब धर्मों का उद्देश्य 'आत्म–अनुभव' और प्रभु प्राप्ति है। परन्तु धर्मों के ठेकेदार, ब्राह्मण, शेख़ तथा अन्य धार्मिक नेताओं ने हमें एक दूसरे के प्रति घृणा और बुराई करना ही सिखाया है।

'पेट' प्रचार (पेट भरने के लिए प्रचार) और 'paid' प्रचार अर्थात् रुपये पैसे के ज़ोर पर किए जाने वाले प्रचार ने अधोगति फैला रखी है। धार्मिक संस्थाएँ व्यापार के अड्डे बन गई हैं, जहाँ झूठ पाखंड और धोखे का माल भरा पड़ा है और सत्य, विश्वास, प्रेम और भक्ति को बाहर निकाल दिया गया है। इसलिए सच्चे प्रभु भक्त अपने आपको इस भीषण अवस्था से मीलों दूर रखते हैं।

अपने समय की कारुणिक हालत बयान करते हुए बुल्लेशाह फ़रमाते हैं :

धरमसाला धड़वाई रैहंदे, ठाकर दुआरे ठग्ग।
विच्च मसीतां कसबी रैहंदे, आशक रैहण अलग्ग।

— कुल्लीयाते–बुल्लेशाह (पृ.366)

अर्थात् धर्मशालाओं में धोखेबाज़ रहते हैं और ठाकुरद्वारों में ठग रहते हैं। मस्जिदों में क़साई रहते हैं, जबकि प्रभु के आशिक़ इन सबसे अलग रहते हैं।

लोगों में शत्रुता और घृणा के बीज बोने का काम उन लोगों का ही है, जो स्वयं अज्ञानता का शिकार बने हैं। यूनान (ग्रीस) की पौराणिक आदिस्त्री, पंडोरा की भाँति वे लोग नहीं समझते कि बिना सोचे समझे बोली गई बातों से वे संसार में कैसा अनिष्ट फैला रहे हैं। धर्मग्रंथों में ऐसे लोगों को 'मनमुख' कहा गया है, जो मन के दास हैं क्योंकि जो उनके मन में आता है, वे बिना उसे सोचे–समझे कहते फिरते हैं। उनके सभी काम स्वार्थ और लोभवश होते हैं। उनकी जिह्वा काटती हुई चली जाती है और लोगों के दिलों में ज़हर घोल देती है। जो कोई भी उनके सम्पर्क में आता है और उनके शब्दों को ग्रहण करता है, वह न केवल इस छूत की बीमारी का शिकार बनता है, अपितु अपने सगे संबंधियों के भी ख़ून का प्यासा बन जाता है। मुसलमान लोग इस तरह के व्यक्तियों को 'काफ़िर' के नाम से पुकारते हैं।

इस प्रकार के मनमुख या काफ़िर व्यक्तियों का एकमात्र उद्देश्य यही होता है कि उनके नाम की प्रसिद्धि हो तथा उन्हें अधिक से अधिक अनुचित रूप से धन, लाभ और सत्ता प्राप्त हों, चाहे इसके लिए उन्हें दूसरों के हितों का हनन क्यों न करना पड़े।

इनके विपरीत एक दूसरे प्रकार के लोग होते हैं, जिन्हें 'गुरुमुख' (गुरु के मुखांग) कहा जाता है। वे दया और प्रेम के सागर होते हैं तथा लोक उपकारक व प्रेम के सोमे होते हैं, जो सहजीवों पर प्रेम की ज्योति की भरपूर वर्षा करते हैं। वे प्रभु को पाने के लिए इस एकता के होने की ज़रूरत को पहचानते हैं। इस्लाम वाले ऐसे लोगों को 'मोमिन' कहते हैं। कुरान शरीफ़ में मोमिन की व्याख्या करते हुए कहा है, "मोमिन वे हैं, जिनके दिलों में प्यार और आदर केवल इस्लाम वालों के लिए नहीं, बल्कि सब धर्मों के महात्माओं के लिए है, जिनका कि कुरान में वर्णन आया है और उन के लिए भी, जिनका नाम कुरान में नहीं आया।" ऐसे लोग उस एकता की कड़ी को देखते हैं, जो संपूर्ण मानवता को बाँधने वाली है और वे व्यर्थ के भेदभावों की ओर ध्यान नहीं देते।

4. आधारभूत सत्य :

ये सभी धर्मों में समान हैं और एक ही रास्ता दिखाते हैं। धर्म–संबंधी सत्य– चाहे वे सामाजिक, नैतिक या आध्यात्मिक हों– सबका उद्देश्य एक ही है। मनुष्य को चाहिए कि वह सदाचार का जीवन व्यतीत करे, संपूर्ण मानव जाति की सेवा करे, इस जीवन यात्रा में दूसरों की सहायता करे और अपने आपको जाने, और फिर प्रभु–ज्ञान व प्रभु–चेतना का विकास करे, जो अंततः प्रभुत्व की ओर ले जाती है। 'धर्म' वास्तव में एक अति शक्तिशाली सत्ता है, जो मनुष्य को उसके सृष्टिकर्ता से जोड़ती है, जिसे वह जीवन के तुच्छ कार्यकलापों में लम्पट हो, जगत से जुड़कर भूल गया है। हमें चाहिए कि हम प्रभु और उसकी सृष्टि से प्यार करें तथा किसी सत्स्वरूप महात्मा की संगति करें। विश्वव्यापी धर्म, जिसे महात्मा लोग प्रत्येक युग में देते आये हैं, प्रभु और उसकी सृष्टि से प्यार करने तथा प्रभु में आस्था रखने और 'क्रियाशील प्रभु सत्ता' या 'पावन शब्द', 'एकंकार' या 'नाम' से जुड़ जाने का ही नाम है। यही अमिट और शाश्वत सत्य है।

संसार के सभी धर्मग्रंथ एक ही बात सिखाते हैं कि मनुष्य नेकपाक और सदाचारी जीवन व्यतीत करे तथा जीवन सत्ता से जुड़ कर, शब्द धारा पर सवार हो अपने पिता परमात्मा के घर पहुँच जाए। परमात्मा ही हमारा आदर्श है और उसकी पूजा प्रेम और भक्ति से करनी चाहिए तथा लोगों को एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक बर्ताव करना चाहिए। सेंट पॉल ने भी मानव जाति को सम्बोधित करते हुए यही बात कही है :

प्रेम से एक दूसरे की सेवा करो।

– पवित्र बाइबिल (गलातियों 5:13)

वेद भी मानव को यही सिखाते हैं :

अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि।।

— अथर्ववेद (3.30.5)

अर्थात् इकट्ठे मिल कर उस प्रभु के गुणानुवाद गाओ।

प्रभु में दृढ़ विश्वास, पवित्र नाम के साथ जुड़ने और प्रभु की बनाई हुई सृष्टि की सेवा करने से बढ़ कर कोई अन्य गुण नहीं। वास्तव में यही

सच्चा विश्वधर्म है, जो संपूर्ण मानव जाति के लिए एक है, जो न कभी बदला है, न ही कभी बदलेगा।

गुरु अर्जनदेव जी सभी धर्मों के आधार में बसे सबसे ऊँचे और पवित्र सत्य के विषय में कहते हैं कि वह सत्य है– 'शब्द' ध्वनि से जुड़ जाना। वही प्रभु का प्रकट रूप और सारी सृष्टि का कारणरहित कारण है :

सरब धरम महि स्रेस्ट धरमु।।
हरि को नामु जपि निरमल करमु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, प॰266)

हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा।।
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰642)

इसी कारण जब गुरु अर्जनदेव जी ने सिक्खों के धार्मिक ग्रंथ, गुरु ग्रंथ साहिब का संकलन किया, तो उसमें उन्होंने अनेक महात्माओं की वाणियाँ रखीं। उन्होंने यह नहीं देखा कि अमुक महात्मा जन्म से हिन्दू है या मुसलमान, यह विचार नहीं किया कि कौन कैसे जीवन निर्वाह करता है, कौन जन्म से उच्च है अथवा नीच। उसमें हम संत कबीर जो जन्म से जुलाहे थे, नामदेव जो छींपे (छींटे छापने वाला) थे, रविदास जो चमार थे, धन्ना जाट जो किसान थे, बाबा फ़रीद जो मुसलमान थे, अन्य जो क्षत्रिय थे– सभी महात्माओं की वाणियाँ पाते हैं। ऐसे महात्मा जो संसार में आते रहते हैं, वे सब बन्धनरहित व मुक्त होते हैं। उनका इस संसार में आने का एक विशेष उद्देश्य होता है कि वे प्रभु की मुक्तिदायिनी अनुकम्पा को, जो लोग उनके वचनों को ध्यान से सुनें और उन पर अमल कर सके, प्रदान कर सकें। यह इस बात का प्रमाण है कि सच्चाई केवल एक है, यद्यपि समय और स्थान का भेद होने से महात्माओं ने उसके अलग–अलग नाम रख दिए। जब भी और जहाँ भी संत–महात्मा संसार में आये हैं, उन्होंने मानवता व भक्ति का उपदेश दिया है, मानव व प्रभु से प्यार करना सिखाया, पर सबसे महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने उन्हें प्रभु के घर जाने का रास्ता दिखाया। उनमें प्रभु की शक्ति काम कर रही होती है, वे स्वयं स्वैच्छिक होते हैं और दुनिया को कठोर व तंगदिल जीवाश्मिक

धर्मों की संकीर्णताओं व धार्मिक विश्वासों से मुक्त कराने आते हैं, ताकि लोग प्रभु की ज्योति में नहा सकें और उसके गुणानुवाद गा सकें।

संत–महात्मा आत्माओं को अपने संरक्षण में ले लेते हैं, न कि उनके भिन्न–भिन्न सम्प्रदायसूचक जड़ित शारीरिक आवरणों को। वे सबको मानव भाईचारे में जोड़ने व दृढ़ करने का प्रयास करते हैं। वे हमें आत्मा का निकास कर 'देह के परे' जाने और नाम के साथ जुड़कर उसके परे के आध्यात्मिक मंडलों में 'प्रवेश' की युक्ति सिखाते हैं। उनका काम व्यक्तिगत आत्माओं को प्रभु से जोड़ना है, तोड़ना नहीं।

वे चाहते हैं कि सारी मानव जाति प्रेम की रेशमी डोर से बँध जाए। वे इसलिए नहीं आते कि झगड़े–फ़साद पैदा करें। मौलाना रूमी गडरिये और हज़रत मूसा की कथा बताते हुए कहते हैं कि एक गडरिया था। उसकी ख़ुदा से लौ लग गई। वह उसके प्रेम में मस्त होकर कहने लगा, हे ख़ुदा! अगर तू मुझे मिल जाए, तो मैं तुझे दूध पिलाऊँगा, कपड़े पहनाऊँगा और तुम्हारे सिर से जूएँ निकालूँगा। मूसा ने यह सुना तो कहा कि तू काफ़िर है, जो ख़ुदा की शान में ऐसी बेअदबी की बातें करता है, कभी ख़ुदा के सिर में जूएँ भी होती हैं। गडरिया बहुत रोया कि उससे बड़ी भूल हो गई है और ख़ुदा उसे कभी माफ़ नहीं करेगा। फ़रमाते हैं कि उसी रात ख़ुदा ने मूसा को बहुत फटकारा और कहा, "मैंने तुझे दुनिया में लोगों को मुझसे जोड़ने के लिए भेजा था, न कि मेरे साथ जुड़े हुओं को तोड़ने के लिए।"

धार्मिक तंगदिली प्रभु–मानवों के मार्ग में ठहर नहीं सकती। वे तूफ़ानों से घिरे जीवन के समुद्र में रोशनी की मीनार (ज्योति–स्तंभ) का काम करते हैं। वास्तव में उनके दिल में सब धर्मों के लिए प्यार होता है और वे उन सबको जीवन व ज्योति देते हैं। यदि ऐसा न हो तो ये सभी धर्म समय के साथ मन्द, शुष्क और निष्प्राण हो जाएँ, जैसे बिना आत्मा के शरीर।

गुरु नानक देव जी तीर्थ यात्रा पर दूर–दूर अरब में मक्का, दक्षिण में संगलद्वीप (लंका) और पूर्व में बर्मा व चीन तक गए। उन्होंने वहाँ भी वही उपदेश दिए, जो उन्होंने हिन्दुओं के धर्मस्थान काशी और हरिद्वार

में दिए। वे सब जगह यही संदेश ले कर गए कि परमात्मा हम सबका पिता है और हम सब आपस में भाई–भाई हैं। जितने भी महात्मा आज तक आए, संत लोग उन सबका आदर–मान करते हैं, चाहे उनकी जाति या वर्ग कुछ भी रहा हो। सोचने की बात है कि यदि चार शराबी इकट्ठे मिलकर बैठ सकते हैं, तो विभिन्न धर्मों के प्रभु भक्त क्यों नहीं? गुरु अर्जन देव, हज़रत मियाँ मीर और भक्त छज्जू का आपस में कितना प्यार था। गुरु अर्जनदेव जी ने अमृतसर के गुरुद्वारे की नींव हज़रत मियाँ मीर से रखवाई। गुरु हरगोबिन्द जी ने मुसलमानों के लिए नमाज़ के वास्ते मस्जिद बनवाई। गुरु गोबिन्दसिंह जी हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अन्य जातियों के लोगों से एक जैसा प्यार करते थे। जब माच्छीवाड़ा के मैदान में तुर्कों ने उन्हें घेर लिया, तो मुसलमान लोगों ने उन्हें वहाँ मुसीबत से बचाया और उनके जीवन की रक्षा की। लड़ाई के मैदान में उनका शिष्य, भाई कन्हैया दोनों ओर से लड़ने वाले– हिन्दुओं और मुसलमानों– दोनों को पानी पिलाता था। जब गुरु जी के कुछ नासमझ शिष्यों ने उसके विश्वासघात की शिकायत की कि यह मुसलमानों को भी पानी पिलाता है और वे तैयार होकर फिर लड़ने को आ जाते हैं, तो गुरु जी ने भाई कन्हैया को बुलाने का हुक्म दिया। जब उससे पूछा गया, तो उसने कहा कि हुज़ूर, मुझे तो हिन्दू अथवा मुसलमान, दोनों में आपकी ही ज्योति दिखाई देती है, मैं भला किसे इंकार करूँ? गुरु जी ने उत्तर दिया, "तूने मेरी तालीम (शिक्षा) को ठीक समझा है, आगे से सबकी मरहम पट्टी भी किया करो।"

एक बार अज्ञानता का पर्दा हट जाता है, तब कोई हिन्दू हो अथवा मुसलमान या किसी अन्य सम्प्रदाय का, ऐसे सब भेदभाव मिट जाते हैं :

जा ते छूटि गयो भ्रम उर का।
तिह आगे हिंदू क्या तुरका।।

— दसम ग्रंथ (चउबीस अवतार, पृ.157)

ईश्वर संपूर्ण सृष्टि का जीवनप्राण व आधार है– जो उसे मानते हैं, उनका, और जो नहीं मानते, उनका भी। जिस प्रकार ईश्वर सबसे प्यार करता है, उसी प्रकार संत–जनों के हृदय में भी सबके लिए प्यार

होता है, क्योंकि वे प्रभु के रंग में रंगे हुए होते हैं। एक बार हज़रत मूसा किसी के साथ बैठ कर खाना खाने लगे। उन्हें यह देखकर घृणा पैदा हुई कि उनके एक साथी ने ख़ुदा का शुक्रिया अदा किए बिना ही खाना शुरू कर दिया। आकाशवाणी हुई कि हे मूसा! जिसे मेहरबानी करके मैंने ख़ुराक बख़्शी है, उससे नाराज़ होने का तुम्हारा क्या मतलब? महात्मा लोग सबसे एक सा प्यार करते हैं, चाहे कोई कितना भी समाज द्वारा घृणित पापी क्यों न हो। यदि मनुष्य अपने भ्रातृत्व में बंधे अन्य जीवों से प्यार नहीं करता, तो उसे कोई अधिकार नहीं कि प्रभु को पिता कहकर पुकारे। सभी जीवन का उद्भव उससे ही है, इसलिए ऊँच–नीच अथवा आस्तिक–नास्तिक में कोई भेदभाव नहीं रखना चाहिए। यदि कोई परमात्मा को नहीं जानता है, तो भी हमें तो पता है कि वह भी उसी का बनाया हुआ है। यही जानकर हमें अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए।

5. धर्म में रीति-रिवाज़ों का स्थान - उनके विभिन्न रूप और महत्त्व :

रीति–रिवाज़, कर्मकांड, पूजा पाठ आदि हर धर्म के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनके तरीक़े सब धर्मों में अलग–अलग हैं। ये फ़र्क अलग–अलग देशों की जलवायु और वहाँ के लोगों के रहन–सहन के ढंग पर निर्भर हैं। उदाहरण के लिए अरब को लीजिए, वह रेगिस्तानी देश है। वहाँ पानी बहुत कम मिलता है, इसलिए वहाँ के लोगों के लिए नमाज़ पढ़ने से पहले हाथ, पाँव, मुँह, कान और गर्दन धो लेना ही काफ़ी समझा जाता है, और जहाँ पानी भी नहीं मिलता वहाँ उनके लिए रेत से ही सफ़ाई कर लेने का विधान है। इस विधि को 'तयम्मुम' कहते हैं। इसी प्रकार भारत में बीकानेर का इलाका रेगिस्तानी है, जहाँ पानी की बहुत कमी है। वहाँ लोगों का यह विश्वास है कि यदि कोई एक दिन में पाँच सेर से अधिक पानी का ख़र्च करता है, तो प्रभु के दरबार में उसे हिसाब देना पड़ेगा।

भारत के अन्य भागों में जहाँ पानी बहुतायत में मिलता है, वहाँ पर यह नियम है कि कोई भी व्यक्ति अच्छी तरह स्नान किए बिना पूजा–पाठ करने न बैठे। पश्चिमी देशों में सब लोग गिरजाघरों में प्रार्थना करते हैं, तो वे सिर से नंगे और पाँव में जूता पहने होते हैं, परन्तु पूर्व में यह

बात सर्वथा विपरीत है। यहाँ लोग मन्दिर या गुरुद्वारों में सिर ढक कर और जूता उतार कर जाते है। उद्देश्य दोनों का वास्तव में एक ही है– उस परम पिता परमात्मा के प्रति आदर और भक्ति प्रदर्शित करना। पूजा की विभिन्न पद्धतियाँ जलवायु और परिस्थितियों को ध्यान में रख कर बनाई गई हैं। पश्चिम में सर्दी होती है और पूर्व में गर्मी, जिसके अनुकूल अलग–अलग तरीक़े बने।

सभी पूजा, पाठ, दान, हवन आदि सब रीति–रिवाज़ों का संबंध मानव शरीर से है और ये सभी हमारे सामाजिक आचरण का अंग बन गई हैं। सबका वास्तविक उद्देश्य है कि हममें पवित्रता और चेतनता आए और हम प्रभु की मौजूदगी में आदर भाव बरतें। इसकी प्राप्ति के उद्देश्य में अपनाये गये बाहरी तौर–तरीक़ों (कर्मकांड) से प्रभु का कोई वास्ता नहीं। जिस प्रकार इस संसार में पिता अपने बाल–बच्चों से प्यार करता है– चाहे वे सुन्दर वस्त्रों में हों अथवा चीथड़ों में– उसी प्रकार परमात्मा अपने सब बच्चों को प्यार करता है– चाहे वे किसी भी रूप में उसके सम्मुख आएँ। यहाँ स्वभावतः प्रश्न उठता है कि जब प्रेम संपूर्ण मानवजाति के लिए विश्व–धर्म है, तो सभी धर्मों की मूल एकता के बावजूद, मानवता इतने अलग–अलग कठोर सम्प्रदायों में कैसे बँट गई? यह भिन्नता अलग–अलग विश्वासों के कारण है, जो समय के साथ सख़्त और लचीलेपन से रहित हो जाते हैं।

गुरु नानकदेव जब मक्का गए, तो वहाँ उन्होंने सर्वशक्तिमान परमात्मा की पूजा का प्रचार किया। मुसलमानों ने कहा कि गुरु नानक और इस्लाम की शिक्षाओं में कोई भी भेद नहीं क्योंकि दोनों अद्वैतवाद को मानने वाले हैं। तब गुरु नानक जी ने बताया कि मेरा अद्वैतवाद निर्पेक्ष ('Absolute Oneness') है, तुम्हारा अद्वैतवाद सापेक्ष ('Relative Oneness') है, जिसके चारों ओर बन्धनों की बाड़ लगा दी गई है। अतः उनमें केवल नाम मात्र की एकता है। उन्होंने कहा कि परमात्मा ने कई पैग़म्बरों और महात्माओं को समय–समय पर संसार में भेजा, ताकि वे लोगों को ठीक रास्ते पर लाएँ और चलाते रहें। आज तक ऐसा ही होता आया है और भविष्य में भी ऐसा होता रहेगा। माँग और आपूर्ति (demand and supply) का नियम क़ुदरत

में भी वैसे ही काम करता है, जैसे इस संसार में। जब–जब संसार में सामंजस्य व मध्यस्थता करने वालों की आवश्यकता होती है, प्रभु की शक्ति में उसका सामान बना देने हेतु कोई कमी नहीं आती है। हर युग में और हर वातावरण और देश में इसी प्रकार धर्म की धारा बहती रही है; वेद, कुरान और बाइबिल आदि धर्म पुस्तकें आईं हैं और भविष्य में भी ऐसा होता रहेगा।

परमात्मा अथाह और अनंत है और मनुष्य सीमित। इसलिए मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि परमात्मा की इच्छा कैसे काम कर रही है और उसका उद्देश्य क्या है, न ही वह उस प्रभु के अनंत गुणों का गान कर सकता है। मनुष्य जैसे–जैसे उसकी ओर बढ़ता है, वैसे–वैसे उसमें परमात्मा की शान और महिमा बढ़ती प्रतीत होती जाती है, जिसका मर्म मनुष्य की अंतर्दृष्टि और समझ के परे की बात है। जल में रहने वाली मछली समुद्र की गहराई और विस्तार का अनुमान नहीं लगा सकती।

तू दरीआउ दाना बीना मै मछुली कैसे अंतु लहा।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰25)

ईश्वर बे–अन्त और असीम है। उसे किसी सीमा में बाँधना तो उसके गुणों के सर्वथा विपरीत है। उस परमपिता परमात्मा ने अनंत ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गोरख, नाथ, राम, कृष्ण, बुद्ध, क्राइस्ट और मुहम्मद बनाए। वे सभी उसकी ज्योति के धारक थे और समय की आवश्यकता के अनुसार और भी आगे आते रहेंगे। मनुष्य सीमित है, वह उस असीम को और उसके बनाए हुए रास्तों को कैसे जान सकता है? जितना व्यक्ति संसार में और सांसारिक ज्ञान व शिक्षा में उन्नति करता जाता है, उतना ही वह प्रभु से और उसकी शान से दूर होता जाता है।

प्रभु वास्तव में असीम है, परन्तु हम सीमित प्राणी उसको सीमाओं में नाप–तोल कर बद्ध रखना चाहते हैं, क्योंकि जब तक हम उसके साथ एकमेक न हो जाएँ, तब तक हम उसको जान नहीं सकते।

हरि बिअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसो रे।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰612)

3.

आदर्श मनुष्य

मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी है। वह किसी न किसी समाज में पैदा होता है और समाज के बिना वह रह नहीं सकता। इसलिए, संत–महात्मा लोगों के सामाजिक आचरण और धार्मिक रीति–रिवाज़ों को नहीं छेड़ते। वे हमें समझाते हैं कि अपने–अपने समाजों, जिन में हम पैदा हुए या जिनसे हम सम्बंधित हैं, में रहते हुए हम पवित्रता और ब्रह्मचर्य के गुण धारण करें, पर हम कभी भी अपनी मानव प्रकृति, जिसे हमें प्रभु ने एक पावन उत्तरदायित्व के तौर पर दिया है, को विकृत न करें। सामाजिक या धार्मिक जीवनाचरण से उपजे वेश–भूषा आदि के बाहरी अन्तर मानव के भीतरी जीवन, जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में एक समान है, पर हावी नहीं होने चाहियें। वे मानवों से व्यक्तिगत रूप में पेश आते हैं (न कि सामाजिक रूप में) और उसमें पिता परमात्मा व उसके बनाये जीव–भ्राताओं के प्रति प्रेम से भरपूर होकर, सदाचारी गुणों, जो उसे आदर्श मनुष्य बनाते हैं, को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे समझाते हैं कि मनुष्य सच्चा पेशा धारण करके, अपने और अपने परिवार हेतु ईमानदारी से जीवनयापन करे और सभी चेतन जीवों से प्रेम करे और उनसे प्रेममय आदर से बर्ताव करे। कहा है :

सैकड़ों आशिक़ हैं, दिलाराम सबका एक है,
मज़हबो-मिल्लत जुदा हैं, मगर काम सबका एक है।

मनुष्य संपूर्ण 'सृष्टि का सिरमौर' है। वह एक देहधारी आत्मा है। हमें चाहिए कि दोनों शरीर की और आत्मा, जो प्रभु का ही अंश है, की दृष्टि से हम आदर्श मानव की तरह जियें। कबीर साहिब हमें बताते हैं :

कहु कबीर इहु राम की अंसु।।

– आदि ग्रंथ (गोंड कबीर, पृ॰871)

इंसान को चाहिए कि वह प्रभु के प्रकाश को प्रकट करे। इसलिए मसीह ने कहा है :

प्रकाश (आत्मा का) अंधकार (शरीर) में चमकता है,
परन्तु अंधकार (शरीर) इस बात को नहीं समझता।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:5)

ध्यान रखो कि तुम्हारे अन्तर जो ज्योति है,
वह अंधकार न बन जाए।

– पवित्र बाइबिल (लूका 11:35)

तुम उसी प्रकार पूर्ण बनो, जिस प्रकार स्वर्ग में
बैठा हुआ तुम्हारा पिता (परमात्मा) पूर्ण है।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:48)

मनुष्य और ईश्वर पूर्ण रूप से एक दूसरे में स्थित हैं। मनुष्य को यही शोभा देता है कि वह परमात्मा की ज्योति को अपने चारों ओर प्रतिबिम्बित करे। परमात्मा उसकी आत्मा की आत्मा है, और उसका शरीर सच्चा हरि–मन्दिर है। उस प्रभु की ज्योति के बिना मानव शरीर ऐसा है, जैसा गिरी (गूदे) के बिना बाहरी खोल; वह बेकार का कूड़ा–करकट है, जो जला देने या दफ़ना देने के योग्य है।

मनुष्य सत्स्वरूप देहधारी है, सत् ही उसका जीवन
है। उसके प्रकाश के बिना वह जीवित कैसे रह सकता है?

फिर,

ब्रहम बोले काया के ओले।
काया बिन ब्रहम किआ बोले।

— कबीर साहिब

हज़रत अत्तार एक महान संत हुए हैं। उन्होंने कहा है :

तू ब-मअनी जाने-जुमला आलमे,
हर दो आलम खुद तूई बनिगरदमे।
दर हक़ीक़त खुद तूई उम-उल-किताब,
खुद ज़-खुद आयाते हक़-रा बाज़याब।

अर्थात् हे मनुष्य! तू अन्तर से सारी सृष्टि की जान है, लोक लोकान्तर तू स्वयं आप है। तू सब ग्रंथों की माँ है, तेरे अन्तर मालिक की आयतें (कुरान के श्लोक) अपने आप उतरती हैं।

यदि मनुष्य अपने दैवत्व को पहचान ले और उसे अपनी ज़िंदगी का आधार बना ले, तो यह संसार जो बुराइयों से भरा पड़ा है, सचमुच में अदन का बाग़, मुक़ामे–हक़ या सचखंड बन जाएगी। फिर प्रभु की बादशाहत स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आएगी, जिसके लिए ईसाई लोग उत्साह से रोज़ाना प्रार्थना करते रहते हैं।

इसलिए हमें यही शोभा देता है कि हम इस संसार को पवित्र लोगों की भूमि बना दें, जहाँ पर ऐसे लोग रहें, जिनमें शैतानी प्रभाव व पाश्विक वासनाएँ, जो मानव को पशु के स्तर पर गिरा देती हैं, वास न कर सकें, जिनमें घृणा, द्वेष, घमंड और तंगदिली से दूर, शुद्ध मानवीय गुण हों। फिर यह संसार स्वतन्त्र और प्रेममय व्यक्तियों का होगा, जिसमें प्रत्येक दूसरों के अधिकारों का आदर करेगा, जहाँ लड़ाई–झगड़ों का निर्णय करने के लिए अदालतों की आवश्यकता न रहेगी, न ही शांति स्थापित रखने के लिए पुलिस की आवश्यकता रहेगी, और न ही विदेशी आक्रमणों से बचने के लिए सेनाएँ रखनी पड़ेंगी। तब पूरे संसार के निवासी सच्चे–जीवन और प्रभु–प्रेम के मूर्त रूप बन जायेंगे, जो निडर और स्वतंत्र होकर स्वर्गीय प्रकाश में, पाक (पवित्र) और ख़ालिस (शुद्ध) लोगों की भूमि (पाकिस्तान, ख़ालिस्तान) पर विचरण करेंगे और पवित्र दैवी गुणों को धारण करेंगे। संतों का आदर्श संसार की आबादी को कम करना नहीं है, अपितु मानव को मानवता सिखाना है।

मानव के लिए पूर्ण और परिपूर्ण बनना एकमात्र आदर्श है। वह ऐसे अधूरे और अपाहिज (मानवता के दृष्टिकोण से) मनुष्य से सर्वथा भिन्न हो, जिसे यह पता ही नहीं कि दैवत्व स्वयं उसके अन्तर में विराजमान है, जो शैतान का डेरा बना ईर्ष्या, लोभ, लालच, धोखा, शत्रुता, कलंक और सब तरह के घृणित कुकर्मों से घिरा है। सेंट पॉल ने मनुष्य के लिए कहा है :

तुम ख़ुदाइयत की शान में पूर्ण हो।

– पवित्र बाइबिल (कोलोसियों 2:10)

सब धर्म हमें पूर्ण पुरुषों की आराधना करना सिखाते हैं, जो प्रभु से एकमेक हैं। श्रीभगवद्गीता (अध्याय 15:1-2) में कहा गया है कि सृष्टि की जड़ें आत्मिक मंडलों में हैं, परन्तु उसकी शाखाएँ पृथ्वी तक फैली हैं। यही हाल मनुष्य का भी है। उसकी जड़ें भी नज़र न आने वाली प्रभुपरायणता में हैं, यद्यपि उसका शरीर इस संसार में चलता–फिरता और कार्य करता नज़र आता है। संसार में जितनी चेतनता काम करती हुई दिखाई देती है, उसके पीछे वह गुप्त रहस्यमयी, परम् शक्तिकेन्द्र काम कर रहा है, जिसके बिना बाहर की चेतनता कार्यशील नहीं हो सकती। जहाँ तक यह इंद्रियों के घाट पर प्रत्यक्ष रूप से कार्यान्वित होता है, हम इसे उतना ही जानते हैं। परन्तु उसका अधिकांश भाग, दोनों भवों के बीच स्थित, आत्मा के केन्द्र या जड़ में है, जिसके बारे में हमें कुछ पता ही नहीं। इसलिए संत–सत्गुरु अधिकाधिक महत्व आत्म–ज्ञान पर देते हैं और समझाते हैं कि हम सबसे पहले अपनी चेतन आत्मा का अनुभव करें।

समय–समय पर महापुरुष इस संसार में आते रहते हैं और हमारे सामने आदर्श मानव का मूलभूत सत्य पेश करते हैं कि हम हर क्षेत्र में पूर्णता हासिल करें। "अपने आप को जानो," यही सदैव उनका नारा और मानव के भीतर अंतनिहित उच्च आत्मिक शक्तियों के प्रति अनभिज्ञ, घनी अज्ञानता से घिरे समाज को उनका आह्वान रहा है। 'Gnothi Seauton' प्राचीन यूनानी और 'Nosce Teipsum' लातिनी समाजों का भी यही आदर्श रहा है। वेदों में भी कहा गया है :

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।

– कठोपनिषद् (1:1:3:14)

अर्थात् उठो, जागो और रुको मत, जब तक कि तुम लक्ष्य को प्राप्त न कर लो।

गुरु नानक साहिब से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह जी तक, दसों गुरुओं ने भारतीय समाज के सामने सच्चे शिष्य और ख़ालसा (ख़ालिस मा'ने

पवित्र) का आदर्श पेश किया, जो मानव जाति से सच्चे प्रेम से पैदा उसकी निःस्वार्थ सेवा करता है। ये आदर्श आध्यात्मिक जीवन का आधार होते हैं और शनैः शनैः तंगदिली व घमंड से मनुष्य को छुटकारा दिलाते हैं।

मुसलमानों ने आदर्श पुरुष को 'मोमिन' का नाम दिया और ईसाइयों ने उसे 'प्यूरिटन' ('Puritan') कहा। वास्तव में सभी महापुरुषों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि मनुष्य अपनी पूर्णता को विकसित करे, ताकि वह मन इंद्रियों के घाट से बहुत ऊपर उठ कर 'परा–मानव' ('Super-man') बन जाये। पंजाब के महान कवि इक़बाल ने ज़र्बे–कलीम में कहा है :

गदाए जलवा रफ़्ती बर सरे-तूर,
किह् जाने तू ज़ ख़ुद ना-महरमी हस्त।
क़दम दर जुस्तजूए-आदमी ज़न,
ख़ुदा हम दर तलाशे-आदमी हस्त।

— इक़बाल, हवाल : नुकाते–दीवाने–शम्स तबरेज़ी (पृ.31)

अर्थात् हज़रत मूसा ख़ुदा का जलवा देखने के लिए सिनाई पहाड़ पर गए, क्योंकि उन्हें पता नहीं था कि स्वयं उनके अन्तर महान रहस्य छुपा पड़ा है। हे सत्य को खोजने वालों! किसी आदर्श पुरुष को खोजो, क्योंकि प्रभु स्वयं भी किसी ऐसे को ही खोजता है, जो उस प्रभु की शान को दुनिया के लोगों को दिखा सके।

सब धर्मग्रंथों ने और संसार के सभी महान शिक्षकों ने मनुष्य की महानता पर ज़ोर दिया है। मनुष्य में इतनी शक्ति है कि वह जितना चाहे, अपने आप का विकास कर सकता हुए, प्रभु–रूप बन सकता है। दुनिया भर की अतुल्य धन–सम्पत्ति और शक्ति, मनुष्य के अन्तर छिपी हुई आध्यात्मिक शक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं। अफ़सोस इस बात का है कि मनुष्य इस रहस्य को नहीं समझता और पत्थरों की तलाश में भटके राहगीर की भाँति इस प्रकार के कचरे के लिए अपना अनमोल जीवन बरबाद कर लेता है।

रस्किन ने भी यही विचार व्यक्त किया है, "संसार में जीवन से बढ़ कर और कोई सम्पत्ति नहीं है— ऐसा जीवन जो प्रेम, प्रशंसा और प्रसन्नता से भरपूर हो। वही देश वास्तव में सबसे धनी है, जिसमें सबसे अधिक सदाचारी और सुखी लोग रहते हैं। वही व्यक्ति सबसे अधिक धनी है,

जिसने अपने जीवन के कार्यों को भली–भाँति पूर्ण करके, अपने व्यक्तिगत रूप से और अपनी सम्पत्ति के द्वारा, दूसरों पर जीवन पर भी ऐसा ही अधिकाधिक सहायक प्रभाव डाला है।"

4.

अध्यात्म-विद्या : इसकी आवश्यकता

व्यक्ति जहाँ कहीं भी जाए, उसे चैन नहीं मिल पाता; हर तरफ़ तनाव, चिन्ता और दुविधा का बोलबाला है। इस विश्वव्यापी हाहाकार का मुख्य कारण यह है कि व्यक्तिगत मन में शांति नहीं। आज, मानव ने संसार के विभिन्न क्षेत्रों में अद्‌भुत प्रगति की है, परन्तु दुर्भाग्यवश उसने अपने अन्तर बसने वाली आत्मा को जानने की कोई कोशिश नहीं की है और उससे वह बिल्कुल अनजान है। उसने तारों भरे नभ के रहस्यों को सुलझाया है, समुद्र की गहराई को भी नाप लिया, अंधकारमयी आंधियों को सह कर एवरेस्ट की चोटी पर भी विजय प्राप्त कर ली, यहाँ तक कि अब वह अंतरिक्ष का अन्वेषण करके अन्तर्नक्षत्रीय सम्पर्क साधने में लगा है। इतना कुछ होते हुए भी यह खेद का विषय है कि मनुष्य ने अपने अन्तर छिपे हुए आत्मा के रहस्य को नहीं खोजा है। वह सदैव इस महान प्रश्नों के प्रश्न के प्रति उदासीन रहा है और उसने आत्म–ज्ञान रूपी जीवन के ज्वलन्त और मूलभूत प्रश्न को बिल्कुल महत्त्व न देकर उसे नकारने की भरसक कोशिश की है, जैसे कि उसका कोई महत्व न हो।

मनुष्य के पास चाहे संसार का अपार वैभव हो, परन्तु यदि वह अपनी आत्मा के विषय में कुछ नहीं जानता, तो सब व्यर्थ है। संपूर्ण ज्ञान का मुख्य उद्देश्य यही है कि मनुष्य अपने आपको को जाने। एक मुसलमान फ़क़ीर ने इस प्रसंग में कहा है कि,

जाने-जुमला इल्म-हा ईनस्त ईं, किह् ब-दानी मन क़ियम दर यौमे-दीं।
क़ीमते-हरकाला मी दानी किह् चीस्त, क़ीमते-खुदरा न-दानी अहमक़ीस्त।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.256)

अर्थात् सारे ज्ञान–ध्यान का केवल एक उद्देश्य है कि मनुष्य अपनी आत्मा के सही मूल्य को समझे। वह अन्य सब वस्तुओं का मोल जानता है, परन्तु कितना दुर्भाग्य है कि वह अपना ही मोल नहीं जानता।

कितने खेद की बात है कि हमने जीवन के अन्य क्षेत्रों में अद्‌भुत प्रगति कर ली, परन्तु आत्म–ज्ञान का हमारा पक्ष बहुत कमज़ोर रह गया। यह एक ऐसा ज्ञान है, जिसके प्रकाश और अनुप्राणन से हम जीते हैं और जिसमें हमारा अस्तित्व है। अपने प्राणाधार सत्य के प्रति अज्ञानता के कारण हमने अपने आपको मूर्ख बना लिया है। क्राइस्ट ने भी यही कहा है :

यदि मनुष्य संसार की सारी दौलत पा भी ले, परन्तु वह अपनी आत्मा को खो बैठे, तो उसे भला क्या लाभ होगा?

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 16:26)

अंश तब तक अंश ही रहता है, जब तक वह अंशी में नहीं मिल जाता, अपनी निज सत्ता को इसके स्रोत में नहीं मिला देता। तेज़ प्रवाह से पर्वत से आती हुई नदी कलकल करती बुलबले और झाग उठाती जाती है, जब तक वह समुद्र में मिल नहीं जाती। यही बात मनुष्य की आत्मा पर लागू होती है। अपनी मूल प्रकृति को न जानती हुई यह अपना स्रोत भी नहीं जानती। इसलिए, जैसे जैसे उसकी जीवन की धारा फैले हुए पत्थरों और डूबी हुई शिलाओं के ज़िन्दगी के पथरीले पथ पर अग्रसर होती है, यह खीजती और आग बबूला होती रहती है। व्यक्तिगत अशांति सामाजिक अशांति में प्रतीत होती है। मनुष्य उस महान मूल सत्य को भूल चुका है कि वह परम पिता की सन्तान है और हम सब आपस में भाई–भाई हैं। परिणाम यह है कि आज भाई–भाई, समाज–समाज, जाति–जाति, देश–देश के बीच संघर्ष चल रहा है।

समय की यह बहुत बड़ी आवश्यकता है कि आध्यात्मिक ज्ञान की प्राचीन विद्या को नये ढंग से प्रस्तुत करके लोगों को बताया जाए, ताकि वे सीख सकें कि आध्यात्मिक जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए। संपूर्ण मानव–जाति अज्ञान के गड्ढे में गिरी हुई है। संसार के अधिकतर व्यक्ति स्वार्थ का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और अपने आप को दूसरों के हक़ को मारकर स्वयं को धनवान बनाने पर तुले हैं। पर जो अध्यात्म में रुचि रखते हैं, वे भी विचलित हैं, जैसे कि वे दो पाटों के बीच फँसे हों– एक ओर है परमसत्य– जिसे संत–महात्मा वैज्ञानिक रूप से स्पष्ट करते हैं

और सिखाते हैं तो दूसरी ओर है अधिकतर अज्ञानी धार्मिक कट्टरवादियों द्वारा सिखाया गया संकीर्ण मत या धर्म के जीवाश्म बने (fossilized) रूवरूप। शिक्षक व प्रचारक कहलाये जाने वाले लोग, जिन्हें लोगों को सीधे रास्ते पर लगाना था, वे स्वयं मायाजाल का शिकार बने पड़े हैं। वे इतना भी नहीं जानते कि वे स्वयं कहाँ खड़े हैं और उन्हें करना क्या है।

हममें से बहुत से लोग बाहरी जीवन की चमक दमक और इंद्रियों के घाट पर विचरने का शिकार बनने से बच नहीं पाते। 'खाओ पीओ और मौज उड़ाओ,' यह हमारा नियम बन चुका है। संपूर्ण ब्रह्मांड के पालनहार, प्रभु की हम कोई आवश्यकता ही नहीं समझते। हम बाहर के छिलके में ही विश्वास रखते हैं, अन्दर के गूदे को नहीं देखते। हम छिलके को ही सटक जाना चाहते हैं और अन्दर की स्वादिष्ट मीठी गिरी को चखना तक नहीं चाहते। हम प्रभु की तलाश भी इंद्रियों के घाट पर ही करते हैं। उसे ढूँढ़ने के लिए हम बर्फ़ से ढकी हुई पहाड़ों की चोटियों पर, पवित्र नदियों के जल में, जलते हुए रेतीले रेगिस्तानों में तथा मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजों में जाते हैं, पर वहाँ वह हमें मिल नहीं पाता। हम उसे जितना अधिक बाहर खोजते हैं, वह उतना ही हमसे बच निकलता है। अब हम उसे वस्तुतः खो बैठे हैं और उस पर से हमारा विश्वास उठ चुका है। कहा गया है :

ऐ ख़ुदा जूयां ख़ुदा गुम करदा ईद,
गुम दरीं अमवाजे-कुलज़म करदा ईद।

अर्थात् हे परमात्मा को ढूँढ़ने वालों! तुमने परमात्मा को मन रूपी समुद्र की लहरों में गुम कर दिया है।

ऐसी निराशा की अवस्था में समय–समय पर संत–महात्मा संसार में मानव जाति का उद्धार करने के लिए आते हैं। उनका सन्देश सबके लिए आशा लेकर आता है, निराशा नहीं। वे दुनिया के विधान को तोड़ने नहीं आते, बल्कि उसे दया करके मुक्त कराने के विधान के द्वारा पूर्ण करने आते हैं। उनके दिलों में सब धर्मों के खुले रूप से लिए आदर होता है और उनके ख़िलाफ़ वे कभी एक भी शब्द नहीं बोलते। प्रत्युतः वे सभी धर्मों को पुनर्जागृत कर उनके रक्तक्षीण जीवनांगों में

एक नये ख़ून का संचार करते हैं, उनकी सड़ते हुई नसों व माँसपेशियों को जीवन्त करके उनमें एक नई जीवनधारा का संचार करके उनको अपनी उच्च मूल अवस्था में, जहाँ से वे गिर पड़े हैं, पुनःस्थापित करते हैं। वे केवल दिशानिर्दिष्ट कर सही मार्ग, जो अन्तस्थित है, न कि बाहर, जो सनातन से सनातन है, जो सृष्टि के सृजन के साथ साथ ही बना और जो सबसे सहज–सुलभ और प्राकृतिक है, प्रशस्त कराते हैं। यह वह पथ है, जो मानव द्वारा निर्मित न होकर, स्वयं प्रभु द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। वे हमें बताते हैं कि प्रभु का अस्तित्व है और सब मनुष्य के द्वारा बनाए गए धर्मों का उद्देश्य एक ही है– प्रभु के प्रति मुड़ना।

अंग्रेज़ी का शब्द 'Religion' (धर्म) लैटिन धातु, 'Ligare' से निकला है, जिसका अर्थ है, बाँधना। उपसर्ग 'Re' का अर्थ है पुनः, अतः Religion का शब्दार्थ हुआ, 'पुनः बाँधना'– उसके साथ, जिससे हम अलग हो गए हैं, बिछुड़ गए हैं। धर्म का अर्थ भी इसी प्रकार का है। यह 'धृ' धातु से निकला है– "धृयते इति धर्मः।" जो धारण किया जाता है– हम जिसके सहारे टिके हैं, जिससे बंधे हैं, जो हमारी आत्मा को उस जीवनस्त्रोत प्रभुसत्ता, चाहे उसे हम किसी भी नाम से पुकारें, से जोड़ता है, वह धर्म है। सच्चा धर्म सम्पूर्ण मानवता की साँझी धरोहर है। वही व्यक्ति सच्चा धार्मिक, सच्चा भगत, सच्चा सिक्ख, सच्चा मुसलमान या सच्चा ईसाई कहलाने के लायक़ है, जिसने अपनी आत्मा को प्रभु–सत्ता से जोड़ लिया है। कहा गया है कि सच्चा हिन्दू वह है, जो ज्योति जगाये अर्थात् अपने अन्दर ज्योति प्रकट करे और घंटी भी बजाए अर्थात् घंटा–नाद का श्रवण करे। सच्चा मुसलमान वह है, जो कोहे–तूर पर चढ़कर ख़ुदा के नूर को देखे। सच्चा सिक्ख वह है जो,

पूरन जोत जगै घट मै तब खालस ताहि नखालस जानै।।

– दसम ग्रंथ (33 सवैये, पृ॰712)

सच्चा ईसाई वह है जो 'Light of God' (प्रभु की ज्योति) को देखने वाला हो। मसीहा हमें बताते हैं कि यह मानव शरीर ही सच्चा हरि–मंदिर है और प्रभु ने मानव को अपनी ही प्रतिकृति के रूप में बनाया। दोनों–

आत्मा और परमात्मा, इसी शरीर में रहते हैं। इनकी अवस्था उन दो भाइयों की तरह है, जो एक ही घर में बसते हैं, परन्तु वे एक दूसरे के बीच खड़े 'अहम्' (मैं–पना) के वज्र किवाड़ के कारण अलग–थलग हुए पड़े हैं।

एका संगति इकतु गृहि बसते
मिलि बात न करते भाई ।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी म॰5, पृ॰205)

दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि एक ही सेज पर दुल्हिन (आत्मा) और दूल्हा (परमात्मा) दोनों विराजमान हैं, पर इन्होंने युगो युगों से एक दूसरे का मुँह भी नहीं देखा।

एका सेज विछी धन कंता।।
धन सूती पिरु सद जागंता।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰737)

दुर्भाग्यवश, समय के साथ, सब धर्मों ने मौलिक विचार को खो दिया है। अब वे केवल सामाजिक निर्वाह की आचार–संहिता व नेक–पाक तथा सदाचारी जीवन की महत्ता को बताने वाले सिद्धांत ही रह गए हैं। इसलिए, संत–जन समाजों के जीवाश्मिक स्वरूपों में कोई हस्तक्षेप नहीं करते क्योंकि किसी न किसी समाज में रहना हर एक के लिए अनिवार्यिक है। संत–जन सब धर्मों के वास्तविक उद्देश्य की ओर संकेत करते हैं– जो कि अपने आपको जानना और प्रभु को पाना है। वे सभी धर्मों के मूल सिद्धांत की ओर इंगित करते हैं और हमें प्रभु तक पहुँचने का रास्ता दिखाते हैं।

5.
धर्म :
यह क्या है और क्या बन गया है

धर्म वास्तव में वह है, आत्मा से संबंधित तथ्यों की नियमावली होने से तो दूर, आजकल धर्मग्रंथों, महाकाव्यों व पुरातन ऋषियों–मुनियों की जीवनियों आदि के पठन–पाठन व समय–समयान्तर से विभिन्न परिस्थितियों में विचारकों द्वारा बनाई विचार–पद्धतियों द्वाराअनुमानित रूप से किया गया प्रभु की उपस्थिति के बारे में ज़रूरी ज्ञान से सम्बंधित ही रह गया है। कुछेक व्यक्तिगण इसी खोज में लगे रहते हैं कि नए और पुराने विचारों का मेल कैसे किया जाए, जबकि कुछ ऐसे हैं जो सामाजिक आचार–व्यवहार के नियमों पर बल देते हैं और नेकपाक तथा सदाचारी जीवन को ही धर्म का संपूर्ण रूप समझ लेते हैं। तथाकथित धर्म के नेता अपने–अपने धर्म के किसी न किसी पक्ष की महत्ता का ढोल पीटते रहते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो यह समझते हैं कि सैंकड़ों हज़ारों वर्ष पूर्व इस धरा पर अपना कार्य सम्पन्न करके चले गये संत–महात्माओं पर अंधविश्वास कर लेने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इनमें से प्रत्येक अपने–अपने तरीक़े से इतना कट्टर बन चुका है कि उन्होंने असली सत्य को बिल्कुल भुला दिया है। इसके परिणामस्वरूप, धर्मान्धता, उत्पीड़न, धर्म–परीक्षक कचहरियाँ, खूँटे पर जला देना आदि ने स्थान ग्रहण कर लिया है– सबसे बुरी बात तो यह है कि यह सब धर्म के पावन नाम में किया जाता रहा है।

धर्म का वास्तविक अर्थ है वह मार्ग, जिस पर चलते हुए प्रभु के घर पहुँचा जाए या आत्मा का परमात्मा से मिलान। परन्तु अफ़सोस यह है कि संकीर्ण पूर्वधारणाओं, विवेक की कमी और संकुचित विचारधाराओं के कारण ही मनुष्य रीति–रिवाज़ों, पुण्य हेतु किए गए कर्मकांडों, वेष–भेष, चक्र–चिन्ह, तीर्थयात्रा, दान, हवनादि बाहरी साधनों और जन्म से मृत्यु

तक के सामाजिक संस्कारों की पूर्ति या विशेष अवसरों पर मन्त्रों और श्लोकों के उच्चारण करने को ही धर्म समझ बैठा है।

जबकि सारा संसार किसी न किसी बाहरी काम–काज में उलझा पड़ा है, प्रभु की बादशाहत अंतर में उपेक्षित रहती है– एक ऐसा अनजाना प्रदेश, जिसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। संत–महात्मा स्पष्ट रूप से इस साम्राज्य के बारे में बताते हैं, परन्तु ऐसे व्यक्तियों के आभाव में, जिन्होंने क्रियात्मक रूप से देह व मन की सीमितताओं को पार कर सत्य का अनुभव किया हो, सच्चाई हमारी पकड़ से फिसल गई है।

ओर जाने के लिए ज़ोर देते रहते हैं। वे स्वयं जन्म—मरण के बंधनों से आज़ाद होते हैं और जीवों का उपकार करने के लिए शरीर रूपी मल–मूत्र का चोला धारण करते हैं। वास्तव में धर्म अपना महत्त्व खो बैठा है और आनुष्ठानिक व कर्मकांडी वक्तव्यों का रूप बन कर ही रह गया है।

कोई विरला व्यक्ति ही ऐसा होगा, जो शरीर के भीतर का मार्ग बता सके और उस तक पहुँचने की प्रक्रिया समझा सके, जो जिज्ञासुओं के लिए आनिवार्यिक हैं और सबसे महत्वपूर्ण– मंडल दर मंडल त्रुटिहीन व अचूक मार्गदर्शक बने, जब तक लक्ष्य तक पहुँचा न जाय। प्रत्युत, अपने आपको महात्मा कहलाने वाले अनेक लोग हमें इस मायाजाल से बाहर नहीं निकाल सकते। वे तो स्वयं इसमें फँसे पड़े हैं। वे हमारी श्रद्धा केवल प्राचीन ऋषियों–मुनियों और अवतारों आदि की शिक्षाओं में कराते हैं, पर ये हमें वह रास्ता नहीं दिखा सकते, जिससे प्राचीन ऋषियों–मुनियों ने सत्य को प्राप्त किया, जिसे हम भी कर सकते हैं। या फिर वे हमें इतना ही बताते हैं कि अमुक–अमुक धर्मग्रंथ प्रभु द्वारा सीधे उद्घाटित हैं और आत्मा के उत्थान हेतु उनका पाठ करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे स्वयं इतना नहीं जानते कि केवल उनके इन अनुभवों का पाठ कर लेने से असली लाभ प्राप्त नहीं होता, जब तक इन अनुभवों को हम अपना न बना सकें। धर्मग्रंथ हमारा मार्गदर्शन भले ही करा दें या फिर आध्यात्मिक यात्रा का कुछ वर्णन भी हमें दे दें, परन्तु वे हमें उस मार्ग पर नहीं प्रशस्त करा सकते, हमारी शंकाओं का समाधान

नहीं कर सकते तथा हमें एक से दूसरे मंडल– जो सभी शब्दातीत हैं, तक नहीं पहुँचा सकते, न ही आंतरिक मार्ग में आनेवाली रुकावटों और कठिनाइयों से भी ये (धर्मग्रंथ) हमें बचा सकते हैं। अपने को विद्वान कहलाने वाले लोग जो पक्ष प्रस्तुत करते हैं, उसके प्रमाण में धर्मग्रंथों से चुनकर उद्धरण और श्लोक आदि प्रस्तुत कर देते हैं, परन्तु जब आत्म–ज्ञान व प्रभु–प्रप्ति के व्यावहारिक ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभव का प्रश्न उठता है, तो वे उस विषय में उतने ही अज्ञानी और कोरे पाये जाते हैं, जितने कि उनके श्रोतागण या अनुयायी।

सच तो यह है कि जब तक व्यक्ति पूर्ण रूप से चेतन होकर अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ नहीं लेता तथा उस प्रभु के गुण और सत्ता को अपने अन्दर धारण नहीं कर लेता, तब तक उसके सब कर्म–धर्म, चाहे वे कितने भी ऊँचे हों, कोई ख़ास लाभ नहीं देते। प्रभु शांति और महाशून्यता का महासागर है। जब तक यह पूर्ण शांति या शून्य की अवस्था हमारे अन्दर नहीं समा जाती, तब तक अशब्द से उठने वाली मूक की ध्वनि को हमारी आत्मा नहीं सुन सकती। उस ध्वनि को पकड़कर ही हमारी आत्मा उसके उद्गम स्थान, महा–मौन या परमात्मा में लीन हो सकती है और सदा के लिए धन्य हो सकती है। यह चुप्पी ही एक वास्तविकता है, जो कभी न बदलने वाली शाश्वतता है, सत्य या परमात्मा हैं, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारें। उसका अनुभव हमारी बाह्य संसार में कार्यशील देश–काल–निमित्त ही से बद्ध मन–बुद्धि नहीं, बल्कि हमारी व्यक्तिगत आत्मा ही कर सकती है। हम भले ही अन्तर में बसे अन्तहीन समुद्र में नहा लें, पर मन की कल्पना और बुद्धि की उड़ान, चाहे कितनी भी ऊँची क्यों न हो, उसके बारे में कुछ भी नहीं जान नहीं सकते।

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौ॰1, पृ॰1)

जब तक हम इन्द्रियजनित मंडल से बंधे हैं, तब तक प्रभु का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकते। सिर्फ़ जब हम मन और बुद्धि को परे रखते हुए इंद्रियों के घाट से उठने लगते हैं, तब हम पिंड, अंड और

ब्रह्मंड को पार करते हैं, तब जाकर उस महान परमानन्दमयी सत्ता का साक्षात्कार होता है। कहा है :

वडा साहिबु ऊचा थाउ।। ऊचे उपरि ऊचा नाउ।।
एवडु ऊचा होवै कोइ।। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौ॰24, पृ॰5)

केवल प्यार और भक्ति के पंखों से हम उस तक पहुँच सकते हैं, कल्पना–लोक में विचरण करने से या बुद्धि की दौड़ से नहीं। निरंतर अभ्यास करके सबसे पहले हमें पूर्ण पवित्रता की अवस्था को प्राप्त करना है, ऐसी अवस्था जिसमें मन के अन्दर कोई विचार न उठे, जो निरन्तर और अप्रत्यक्ष रूप से आत्मा पर हावी होकर, उसे अपने चंगुल तक सीमित कर लेते हैं। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है, आत्मा का परमात्मा से जुड़ जाना। यह सोच–विचार या बुद्धि का विषय नहीं, भले ही वह एक प्रारम्भिक क़दम या लक्ष्य के प्रति एक साधन ज़रूर है।

6.

अध्यात्म-विद्या और धर्म

अध्यात्म–विद्या या रूहानियत 'सुरत–शब्द योग' का ही दूसरा नाम है। दूसरे शब्दों में, इस योग का अर्थ है, 'सुरत' (आत्मा) का 'शब्द' (ध्वनि–धारा, ध्वनि–सिद्धांत या कार्यशील प्रभुसत्ता) के साथ योग (जुड़ना) । यह आत्मा का आन्तरिक अनुभव है। अलग–अलग धार्मिक सम्प्रदाय जो कुछ हमें बताते हैं या जिसकी प्राप्ति का हमें विश्वास दिलाते हैं, यह उन सबसे कहीं श्रेष्ठ है। इस विज्ञान को 'संत–मत' (पूर्ण महापुरुषों का पथ) कहते हैं। इससे हमें अध्यात्म के मौलिक नियमों का पता लगता है। यह इस युग में प्रचलित धर्मों से बहुत ऊँचा है, क्योंकि वे तो कुछ प्रचलित सिद्धांतों और विश्वासों मात्र को सिखाते हैं और चमत्कारों व ऋद्धियों–सिद्धियों को उछालते हैं। विज्ञान तब तक सच्चा विज्ञान नहीं कहलाता, जब तक वह परिणामों की तह तक नहीं पहुँच जाता। आध्यात्मिक ज्ञान में अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं। यह एक ऐसा ज्ञान है, जिसकी सत्यता अन्य विज्ञानों के समान गणित की परिशुद्धता की भाँति खरी उतरती है। जहाँ कहीं और जब–जब लोगों ने इस आध्यात्मिक ज्ञान के प्रयोग किए, सबके सब के बताये अनुभवों में एक ही जैसा परिणाम प्राप्त हुआ।

आध्यात्मिक जीवन एक–एक करके विभिन्न शरीरों या कोशों– पिंडी, अंडी और ब्रह्मंडी, जो आत्मा को घेरे हुए हैं, उतार फेंकना है, जब तक वह अपने मौलिक रूप में जगमग न हो जाए, जो कि स्वयंभू और परछाईं रहित है। यहाँ पहुँचकर आत्मा अपने आपे में आकर कह बैठती है, 'अहम् ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ); 'तत्त्वमसि' (मैं वह हूँ, जो तू है); "मैं चेतनता के महासागर की बूंद हूँ।"

आत्मा में जब ऐसी चेतना आ जाती है, तभी वह अपने उद्‌गम स्थान, जो आनन्द का महासागर है, की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ती है। इसे ही शाश्वत 'जीवन–मुक्ति' कहते हैं। जब मनुष्य प्रभु के रंग में रंग जाता है, तब उसका सोच, कथन व कार्य भी प्रभु का हो जाता है। वह सबके लिए जीवन, प्रेम और ज्योति का सदा रहने वाला स्त्रोत बन जाता है :

पिता पूत एकै रंगि लीने।

– आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1141)

जिउ बुलावहु तिउ नानक दास बोलै।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰292)

और भी कहा है :

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।।

– आदि ग्रंथ (तिलंग म॰1, पृ॰722)

मौलाना रूम फ़रमाते हैं :

गुफ़्ताए-ऊ गुफ़्ताए-अल्लह बुवद,
गरचिह् अज़ हल्कूमे-अब्दुल्ला बुवद।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.213)

अर्थात् वली अल्लाह (महात्मा) का कहा हुआ अल्लाह का कहा हुआ होता है– चाहे देखने में आवाज़ इंसानी गले से निकलती हुई मालूम होती है।

मसीह ने कहा है :

मैं और मेरा पिता एक ही हैं। .... सब चीज़ें मुझे मेरा पिता भेजता है। .... मैं पिता में हूँ और पिता मुझमें है। जो कुछ भी मैं आपको कहता हूँ, वह मैं अपने आप नहीं कहता, बल्कि मेरा पिता जो मुझ में रह रहा है, वही मुझसे कहलवाता है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 10:30, 14:10-11; मत्ती 11:27)

पानी की बूंद समुद्र में पहुँच कर अपना अस्तित्व खोकर समुद्र का अभिन्न अंग बन जाती है। उसी प्रकार आत्मा जब प्रभु के पास पहुँच जाती है, तो वह प्रभु का ही रूप बन जाती है। शारीरिक रूप में बाक़ी

जीवन के लिए उसका अलग अस्तित्व नहीं रहता, बल्कि वह जीवन के महासागर, प्रभु मे एकमेक है। ऐसी अवस्था गुरु कृपा से ही प्राप्त होती है और तब अपने असली घर जाने की कठिन यात्रा सरल–सुगम हो जाती है। मनुष्य के लिए सत्गुरु की सहायता के बिना, स्वयमेव इसे प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ।।

– आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म॰4, पृ॰556)

प्रभु के घर जाने का मार्ग केवल एक और एकमात्र है, जो सबके लिए एक समान है– चाहे कोई अमीर हो या ग़रीब, उच्च हो या नीच, विद्वान हो या अनपढ़, पूर्वी सभ्यता का हो या पश्चिमी सभ्यता का। यह मार्ग सबसे पुरातन और सबसे प्राकृतिक है, अपने आकर्षण में सार्वभौमिक, क्योंकि इसे स्वयं प्रभु ने अपने बच्चों के कल्याण के लिए बनाया है, जिनमें से चाहे कोई संसार के किसी भी कोने में रह रहा हो या वह किसी भी धर्म को मानता हो और किसी भी जाति या वर्ण का हो। यही आध्यात्मिक विद्या का सार है, जिसे संत–महात्मा समय–समय पर संसार की आवश्यकता अनुसार, उस समय की बोली जाने वाली साधारण भाषा में लोगों को सिखाते हैं। यही कारण है कि सब महात्माओं के उपदेश एक जैसे हैं। वेद में कहा गया है :

एकम् सत् विप्रा बहुधा वदन्ति

– ऋग्वेद (1:164:46)

अर्थात् 'सत्' एक है, पर महापुरुषों ने इसका वर्णन अनेक प्रकार से किया है।

संतजन तूफ़ान भरे संसार सागर के खेवट हैं। वे सत्य की इच्छुक आत्माओं को छिछले पानी और डूबी चट्टानों से बचा लेते हैं तथा तब तक चैन से नहीं बैठते, जब तक कि उन्हें उनके पिता परमात्मा की गोद में पहुँचा नहीं देते। संत–जन विशुद्ध आत्मिक धुरधाम से अपना मिशन लेकर आते हैं और सांसारिक दुखों से संतप्त, थकी–मांदी, भटकती हुई अपने स्रोत और जीवन के उद्गम से मिलने के लिए आतुर आत्माओं का उद्धार करते हैं और उन्हें परमात्मा के घर ले जाते हैं। मौलाना रूम कहते हैं :

चीस्त रूह आं तायरे-कुदसी सिफ़त,
दर क़फ़स महबूस बहरे-मअरिफ़त।
आमदा बहरे-तिजारत अज़ अदम,
रू बदाँ सू बाशद ऊ रा दम-ब-दम।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 6, पृ.521)

अर्थात् ऐसे महापुरुष मानव शरीर में परमात्मा होते हैं और उसी का ज्ञान लेकर आते हैं। वे अज्ञात देश से आत्माओं का व्यापार करने आते हैं और उनकी दृष्टि सदा पीछे (प्रभु) की ओर लगी रहती है।

धर्मग्रंथ ऐसे ही संत–महात्माओं के आध्यात्मिक अनुभवों से परिपूर्ण हैं और ये संपूर्ण मानव जाति की सांझी धरोहर हैं। उनके उपदेश सबके लिए एक जैसे हैं, चाहे कोई किसी भी जाति, समाज या देश का हो। जिस प्रकार ईश्वर सबका साँझा है, उसी प्रकार संत भी संपूर्ण मानवता के लिए एक जैसे हैं। वे बिना किसी संज्ञासूचक चिन्हों व नामावली भेदभाव के सब से आत्मा के स्तर पर बात करते हैं, क्योंकि प्रभु उन सबका होता है, जो उसको अपना समझते हैं।

आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा।।
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नही संतापा।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ भगत रविदास, पृ॰658)

सुरत–शब्द योग का लक्ष्य आत्मा को सीधा परमात्मा के साथ जोड़ना है। सत्गुरु जब नाम (दीक्षा) देता है, तो शिष्य को व्यक्तिगत आंतरिक अनुभव देता है– यह अनुभव चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न हो। इस अनुभव को नियमपूर्वक साधन के द्वारा दिन–प्रतिदिन विकसित किया जा सकता है। सभी धर्मग्रंथ इस प्राकृतिक योग की शिक्षाओं का सूक्ष्म वर्णन करते हैं। जैसे ईश्वर संपूर्ण मानव जाति के लिए एक सा है, उसी प्रकार आत्म–ज्ञान के महात्मा भी सबके लिए एक जैसे हैं। जैसे–जैसे व्यक्ति इस आध्यात्मिक मार्ग पर उन्नति करता जाता है, अज्ञात तथा आश्चर्यजनक दृश्य उसे अन्दर दिखाई देने लग जाते हैं, जिनकी वह स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता। इस प्रकार के सब अनुभव सत्गुरु की अपार कृपा से ही संभव हैं।

संक्षेप में, कोई भी व्यक्ति मार्गदर्शक की सहायता के बिना प्रभु के मार्ग पर नहीं चल सकता। ऐसे महापुरुष को किसी भी नाम से पुकारो– उसे 'पूर्ण गुरु' कहो या 'मुर्शिदे–क़ामिल' या 'रहबरे–हक़', बात एक ही है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि सत्य की खोज करने वाला सबसे पहले ऐसे पूर्ण गुरु की खोज करे, जिसे सुरत–शब्द योग के सिद्धांतों और व्यक्तिगत अनुभवों में पूर्णता प्राप्त हो, चाहे ऐसे महात्मा की तलाश में उसकी सारी आयु लग जाए, चाहे उसे गली–गली, स्थान–स्थान, देश–देश भटकना पड़े या दसों दिशाओं में जाना पड़े, क्योंकि यह रास्ता बहुत संकरा और सूक्ष्म है, तलवार की धार से भी तेज़, और विरले लोग ही इसे ढूंढ पाते हैं। यहाँ स्थूल शरीर के मोह को सूली पर चढ़ाना पड़ता है। एक पूर्ण गुरु ही यथार्थ रूप में आत्मा को अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जा सकता है। वह जीते–जी भी साथ नहीं छोड़ता और मर कर भी नहीं :

बा तू बाशद दर मकान ओ ला-मकां,
चूं बमानी अज़ सरा ओ अज़ दुकां।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.45)

अर्थात् वह सदा तुम्हारे साथ रहेगा, इस दुनिया में भी और उसके बाद भी।

जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंनि।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰1, पृ॰729)

इसलिए कहा गया है :

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ।।
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि।।

– आदि ग्रंथ (मारू वार म॰5, पृ॰1102)

संत–महात्माओं की संगति में ही मनुष्य देहध्यास की चेतनता से ब्रह्मांडीय चेतनता में उठता है और फिर महाचेतनता में, जो महाप्रलय की सीमा के परे है सदा–सदा एकरस रहती है। जितने भी दुख और कष्ट हम झेलते हैं, उनका कारण यह है कि हम मालिक से बिछड़ गए हैं, परन्तु हम उससे फिर से जुड़ कर प्रभु के साम्राज्य को प्राप्त कर

लेते हैं। आदि पुरुष (आदम) की ग़लती के कारण हमने अदन के उद्यान को खो दिया और अन्य आदि पुरुष (परमात्मा के पुत्र) की कृपा से हम उस परम पिता के साथ जुड़ सकते हैं। हमारी आँखों के पीछे वज्र कपाट (लोहे का दरवाज़ा) (iron curtain) है, जो केवल सत्गुरु की दया से खुल सकता है और हम प्रभु की ज्योति में विचरते हुए परम आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर, फ़रीद फ़रमाते हैं :

उठु फरीदा दुनिया गमन कर, दुनिया भालण जाए,
मत कोई बखसिया तै मिलै, तू भी बखसिया जाए।

अर्थात् हे फ़रीद! दुनिया भर में किसी पूरे गुरु को खोजो। उसे हर जगह खोजो क्योंकि एक बार तुम किसी बख़्शिंदा को ढूँढ़ लोगे, तो तुम भी बख़्श दिए जाओगे।

ऐसा महात्मा न केवल हमें मार्ग बताता है और हर समय हमारे साथ रहता है, बल्कि आध्यात्मिक मार्ग में भी हमारा साथ देता है और हर मंडल में– पिंड से लेकर सचखंड तक– हमारा पथ–प्रदर्शक बना रहता है।

जब आत्मा पिंड से ऊपर उठती है और तारे, सूर्य और चाँद के प्रारंभिक क्षेत्रों को पार करती है, तो गुरु का दिव्य रूप प्रकट होता है। जब अन्तर में गुरु–स्वरूप प्रकट हो जाए, जिसे 'गुरुदेव' के नाम से पुकारते हैं, तो शिष्य यथार्थ में द्विजन्मा बनता है। ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर गुरु शिष्य की आत्मा को अपने संरक्षण में ले लेता है और आगे के मंडलों तक ले जाता है। क्राइस्ट ने भी कहा है :

जब तक तुम पुनः जन्म नहीं लेते, तब तक तुम प्रभु के राज्य में दाख़िल नहीं हो सकते।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:3)

यह आत्मा का जन्म है, जो कि अन्य जन्मों से सर्वथा भिन्न है। जल द्वारा होने वाले जन्म की उत्पत्ति दूषित तथा नश्वर बीज से होती है, जबकि आत्मा का जन्म ऐसे बीज से होता है, जिसका कभी नाश नहीं होता और जो कभी दूषित नहीं होता। यहाँ से लेकर आत्मा गुरु

के संरक्षण में आ जाती है और कोई भी दुष्ट शक्ति इसे बहका नहीं सकती।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, संतों के उपदेश पुरातन से पुरातन और सनातन से सनातन और प्राकृतिक हैं। वे सब वर्गों व उम्र के लोगों के लिए समान रूप से उपयुक्त हैं। उनमें ऊँच–नीच, रंग–रूप, धर्म और उम्र आदि का कोई भेदभाव नहीं। संतों का मार्ग सहज मार्ग है और कभी नहीं बदलता। इस मार्ग की शिक्षा केवल क़ामिल सत्गुरु से ही मिल सकती है। प्रत्येक व्यक्तिगत इंसान ऐसे सत्गुरु के उपदेशों की सत्यता को परखने के लिए भी उनको प्रायौगिक रूप में लाकर देख सकता है।

7.
साम्प्रदायवाद
(फ़िरकेबंदी)

आमतौर से दुनिया के लोग समझते हैं कि जो व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण की आचार संहिता विभिन्न धर्मों में दी गई है, वही सब कुछ है और वही लक्ष्य है। वे किसी न किसी धर्मपुस्तक पर अपनी श्रद्धा बना लेते हैं या फिर बिना सोचे–विचारे, प्राचीन काल के धर्मगुरुओं को अपना इष्टदेव मान लेते हैं। यह आध्यात्मिकता नहीं, संकीर्ण साम्प्रदायवाद है, जो धर्म से पोषण पाकर, धर्म का रंग लेकर उसी का रक्त चूसती रहती है और उसी के नाम पर फलती–फूलती है। यहाँ तक कि धर्म की आत्मा निष्प्राण हो जाती है और यह मात्र रीति–रिवाज़ और आनुष्ठानिक बनकर रह जाता है। तब खोखले ढोंग, दिखावे, चमक–धमक और पक्षपात का बोलबाले से बुरी तरह से घिर कर बेचारा चित्त संर्कीण पूर्वधारणाओं से इतना त्रस्त हो जाता है कि वह अपरिमित संहार और नाश का शैतानी ताण्डव नृत्य शुरू कर देता है।

दुख की बात तो यह है कि ऐसा सब कुछ धर्म के नाम पर होता है। धर्म केवल इस लक्ष्य से चलाया इसलिए गया था कि वह भटकी हुई आत्माओं को प्रभु के साथ जोड़े, परन्तु उसका यह सारभूत उद्देश्य लुप्त हो गया। आध्यात्मिक पवित्रता युगों–युगों की धूल और लोगों के भाषणबाज़ी के तले दब कर समाप्त हो गई। धर्म के तथाकथित नेतागण आत्म–ज्ञान के विषय में कुछ नहीं जान कर, सिर्फ़ बुद्धि के घाट पर तर्क–वितर्क में लगे रहते हैं और मात्र उसके दार्शनिक व शास्त्रार्थ पक्ष तक अपने को सीमित रखते हैं। अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए वे ऐसे नये–नये सिद्धांतों की रचना करने लग जाते हैं, जिनमें व्यावहारिक विवेक लेशमात्र भी नहीं होती। धर्म, शुरूआत में आत्मा के क्रियात्मक विकास के

लिए बनाया गया था, परन्तु अब वह राजनैतिक, सामाजिक या दार्शनिक मसलों का अड्डा बन गया है।

जैसे–जैसे सम्प्रदाय बढ़ते जाते हैं, हज़ार फण वाली धार्मिक कट्टरता नाना प्रकार के कर्मकांडी रूप धारण करके सामने आती है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने आपको धर्म और सही धार्मिक विश्वासों व मान्यताओं का असली संरक्षक बताता है। पर सच्चाई यह है कि धर्म सिद्धांतों का पुलिंदा नहीं, किन्तु एक व्यावहारिक विषय है, जो आत्मा को मन और इंद्रियों की गुलामी से आज़ाद कराने से सम्बद्ध है। जोश से भरकर ये सम्प्रदाय, सत्य को भूल कर, बाहरी क्रियाओं और रीति–रिवाज़ों पर ही बल देने लगे हैं। आजकल के धर्म मात्र सामाजिक संस्थाओं से अधिक कुछ नहीं, जिनका मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार करके भ्रष्टाचार से दूर रखना ही है। परन्तु धर्म का वास्तविक अर्थ ईश्वर की ओर लौटने का मार्ग है, जो कि एक आंतरिक प्रक्रिया है, पर दुर्भाग्यवश, हमने इतने बाहरी क्रियाएँ बना ली हैं कि हम इसके दूषित संस्कारों के अतिरिक्त कुछ और सोच नहीं पाते। आज हर संप्रदाय का नेता सिर्फ़ उसी महापुरुष या उसी धर्मग्रंथ का आदर करना सिखाता है, जिसको कि वह स्वयं मानता है, न कि आज तक आए सभी महापुरुषों और सभी धर्मग्रंथों का।

अध्यात्म–विद्या के सूर्य, जो कि सब धर्मों का मूल है, को त्याग कर हम सब के भीतर विद्यमान प्रभु की ज्योति को देखने के बजाय, मृगतृष्णा की भाँति इधर–उधर भागते फिर कर उसकी एक न एक किरण को यहाँ वहाँ पकड़ने की कोशिश में जुटे हैं। इस प्रकार हमने अपनी दृष्टि को इतना संकुचित बना लिया है तथा विचारों को इतना तंग कर लिया है कि हम अपनी नाक के परे तक भी नहीं देख सकते। हमने अपनी सीमा स्वयं नियत करके स्वयं को कुएँ का मेंढक बना लिया है। परिणाम यह हुआ है कि हम सत्य को भूलते जा रहे हैं– वह सत्य जो कि अटल और शाश्वत है और हम यह सहन भी नहीं कर पाते कि दूसरे क्या कह रहे हैं। हमारी आँखें धुंधली हो चुकी हैं और हम प्रत्येक वस्तु को शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे हैं। ये हम ही हैं, जिन्होंने अपने क्षुद्र विश्वासों और मान्यताओं की रक्षा के लिए संकीर्ण सीमाओं की

काँटेदार झाड़ियाँ बो दी हैं। संत–महात्माओं, जिन्होंने सृष्टि के आदि काल से जिन बातों की शिक्षा दी है, हम उन्हें भूल चुके हैं। इस प्रकार धर्म संकीर्ण कटघरों के समान बन गये हैं, जिनमें प्रत्येक अपनी–अपनी बाज़ी जीतने का प्रयत्न कर रहा है, जिसका हृदय इतना विशाल नहीं कि वह प्रभु के जीते–जागते प्रतिरूप, इस संपूर्ण संसार और जीवन की सम्पूर्णता को अपना सके।

धर्म–प्रवर्तकों ने धर्म की नींव प्रभु से प्रेम, त्याग और आत्मा की आज़ादी पर स्थापित की थी, परन्तु बजाय इसके कि वे शिक्षायें हमें प्रभावित करतीं, धर्मों के ठेकेदारों ने हमें संकीर्ण विचारधाराओं में बहा दिया। ये लोग (धर्म के ठेकेदार) बेड़ियों के जैसे काम करते हैं और हमें अपने जाल में फँसाये रखते हैं।

महापुरुषों की उदारवादी व लचीली शिक्षाओं को लेकर बने धर्म के रूढ़ीवादी सिद्धांतों से संस्थाओं का निर्माण किया गया है। पर उनके जीवन्त और सन्तोषदायी स्पर्ष और प्रभाव मिलने के विपरीत हम अपने को धर्मों के महान सस्थापकों के अनुयायियों द्वारा गढ़े गये कठोर स्वरूपों और सिद्धांतों से पेश हुआ पाते हैं। ये व्यक्ति हमें जकड़े रहने के लिए कितनी ही बेड़ियों और बन्धनों को बनाते रहते हैं। जो कोई भी इनके बंधनों से छूट कर आज़ादी से विचरने की सोचता है, उसे विधर्मी करार दिया जाता है, उसे समाज से निष्कासित कर दिया जाता है, मौत के घाट उतार दिया जाता है और झाड़ा–फूंका जाता है, जैसे कि वह कोई प्रेतात्मा हो। ऐसे नेतागण प्रेम के विश्वव्यापी धर्म से बहुत दूर हैं। मानव–जन्म सृष्टि में सबसे ऊँचा है। सिर्फ़ इसी योनि में प्रभु प्राप्ति का कार्य सफल हो सकता है और संपूर्ण सृष्टि– चाहे वह किसी भी रूप में हो– से प्रेम किया जा सकता है। परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि सत्य से विलग होकर और प्रभु से टूट कर मनुष्य ने मनुष्य को ही अपना शत्रु बना लिया है और परमात्मा से प्यार करने और उसकी भक्ति करने के बजाय, मानव धर्म का ठेकेदार और मनुष्यों का नेता बन बैठा है। एक मुसलमान फ़क़ीर ने कहा है :

दानी किह् चीस्त दुनिया दिल अज़ ख़ुदा बुरीदन,
जुज़ इश्के़-ऊ गुज़ीदन जुज़ ज़िक्रे-ऊ शुनीदन।

– दीवाने बू–अली शाह क़लन्दर (पृ.84)

अर्थात् प्रभु से विमुख होना और उसको छोड़कर किसी और से प्रेम करना या किसी और की कथाएँ सुनना ही दुनियादार होना है।

और,

गर हमी ख़्वाहीद पैवस्तन बा वाए वाइज़ां,
बायद अज़ दुनिया-ओ-दीं करदन शुमा रा इनकि़ताअ।

– दीवाने बू–अली शाह क़लन्दर (पृ.84)

अर्थात् अगर आप उपदेशकों के उच्च आदर्श को पाना चाहते हो, तो दुनिया से मुँह मोड़ कर सच्चे मालिक के साथ जुड़ो।

यह पृथ्वी यथार्थ रूप में स्वर्ग बनने के बजाए, जिसके लिए ज़ोर–शोर से रोज़ प्रार्थना करते हैं, पारस्परिक अविश्वास, वर्गों के बीच ईर्ष्या, साम्प्रदायिक घृणा, देशों के बीच द्वेष और अंतर्राष्ट्रीय कलह का नरक बन चुकी है। दूसरों की क़ीमत पर आत्म–प्रशंसा हमारे जीवन का अंग बन चुकी है। हम बातें तो शांति की करते हैं, पर सिखाते हैं अशांति, विरोध और असंतोष। यह सब संकीर्ण फ़िरकेबन्दी का ही नतीजा है, जो कि हमारे रेशे–रेशे में समा चुकी अज्ञानता से पैदा हुआ है। परमात्मा और मानव–जाति के प्रेमी होने की बजाय हम समाजों की जकड़नों में फँस गए हैं और दूसरी समाजों में जाना एक जघण्य अपराध समझते हैं।

8.

धर्म का उदय

जब से जीव में आत्म–चेतनता आई है, तबसे ही उसने सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान परमात्मा की खोज शुरू कर दी। आत्मा अपने को चारों ओर से अनेक सीमाओं से बद्ध पाती है, हर प्रकार की अपर्याप्तता और अपूर्णता और मृत्यु, बीमारी और दुखों के सामने लाचारगी, सभी मिल कर मनुष्य के अन्तरतम में सब जीवन, सब प्रकाश व सब सुख और परमानन्द का स्रोत ढूंढने के लिए प्रेरित करते हैं। वह एक ऐसी शक्ति को ढूँढ़ना चाहता है, जिससे वह सभी बुराइयों का मुक़ाबला कर सके, काल की शक्तियों का सामना कर सके, दुखों और क्लेशों से छुटकारा पा सके और इस परिवर्तनशील संसार में स्थायी प्रभु सत्ता से जुड़ सके। वह ऐसी स्थायी धुरी को पाना चाहता है, जिसके चहुँ ओर संसार की उत्पत्ति और संहार का नृत्य निरन्तर होता रहता है।

जीवन और मरण, ज्योति और अंधकार, सच और झूठ, अमीरी और ग़रीबी– इस द्वैत के रहस्य को सुलझाने के लिए मनुष्य ने हर युग में प्रयत्न किया है। जब मनुष्य को अपने चारों ओर के वातावरण से संतोष नहीं होता, तो वह इस अंतहीन खोज को फिर से एक नये सिरे से शुरू कर देता है और इसके बारे में विचार करने लगता है कि सब वस्तुएँ कहाँ से आईं और क्यों आईं।

अब वह जीवन के उस मुख्य आधार को ही ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है, जहाँ से जीवन का सृजन करने वाली शक्तियाँ पैदा होती हैं, जो हमारे शरीर और उसके अंगों को जीवन्त करती हैं और उस के इर्द–गिर्द सब कुछ को चलायमान रखती हैं। एक बार जब मनुष्य इस प्रश्न को घेर लेता है, तो वह इसे कभी छोड़ नहीं सकता और वह इस समस्या को सुलझाने के लिए पूरी तरह समर्पित हो जाता है और इसे किसी भी तरह

इसे हल करना चाहता है। सबसे पहले वह जिस युग और वातावरण में रहता है, उसके सिद्धांतों व मान्यताओं में उस सत्य को ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है। परन्तु जब उसकी तसल्ली नहीं होती, तो वह कई मत–मतांतरों, उल्टे–सीधे सिद्धान्तों और अनुमानों के चक्कर में पड़ जाता है, परन्तु किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता और अपने लिए किसी मार्ग ढूंढ पाने में असमर्थ पाता है। तब अपने मन की शांति के लिए वह धर्मग्रंथों की ओर बढ़ता है। परन्तु यहाँ भी उसके सामने अनेक दुरूह कठिनाइयाँ आती हैं। इनका मुख्य कारण यह है कि जिस प्राचीन भाषा में वे धर्मग्रंथ लिखे गए हैं, उसे वह अच्छी तरह समझता नहीं; साथ ही, इस विषय को भी वह कठिन पाता है और आत्म–ज्ञान के अनुभवी व्यक्ति उसे मिलते नहीं, जो उन ग्रंथों के वास्तविक अर्थ को ठीक–ठीक और सच्चाई से समझा सकें।

यह महत्वपूर्ण तलाश अब एक नया मोड़ लेती है। मनुष्य पुरानी परम्पराओं, रीति–रिवाज़ों, कर्मकांडों और मान्यताओं से अपने आपको परे हटा लेता है, ताकि वह अदृश्य ज्योति और प्रभु शक्ति की ओर ध्यान दे सके और उनकी खोज करे तथा उस 'खोये हुए शब्द' को ढूँढ़े, जो उसके बाहरी संसार के सब अनुभवों से अतीत व अधिक शक्तिशाली है। बाहरी खोज के बजाय, जिज्ञासु धीरे–धीरे अपना ध्यान भीतर की ओर बसती आत्मा के विचार पर केंद्रित कर लेता है। इस तरह वह सच्चे धर्म (religion) और केवल ऐन्द्रियजनित जगत से सम्बंधितधार्मिक विश्वासों (religiosity) के बीच के अन्तर को अच्छी तरह समझ लेता है। जीवन का बीज– आत्मा, जीवन की गहराई में ही छिपा है, जो हर जीव में विद्यमान है, फूल और पौधों आदि में भी।

अध्यात्म का संबंध केवल आत्मा से जुड़े मुख्य–मुख्य प्रश्नों से है– आत्मा क्या है, कहाँ बसती है, कैसे यह काम करती है, कैसे अंतर्मुख होकर इसे एक जगह टिकाया जा सकता है, मृत्यु के बाद यह कहाँ जाती है, कैसे इसे मन–इंद्रियों के घाट से ऊपर लाया जा सकता है, आत्मा की आन्तरिक यात्रा कैसे होती है, इसे कौन–कौन से मंडलों को पार करना होता है तथा अंत में कहाँ तक पहुँचती है– इस प्रकार की अनेक

बातें, जिनसे आत्मा का कल्याण होता है, अध्यात्म के क्षेत्र में आती हैं। इस प्रकार, अध्यात्म आत्मा का धर्म है, जो व्यक्ति के सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य से सर्वथा भिन्न है, जो दोनों आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर हैं। एक प्रसिद्ध कहावत है : 'A sound mind in a sound body,' अर्थात् 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन'। परन्तु, इन दोनों के पीछे स्वस्थ आत्मा का होना सबसे आनिवार्यिक है क्योंकि शरीर और मन, दोनों को ताक़त आत्मा, जो एक महान शक्ति का केन्द्र है, जिसके जीवन व ज्योति में ये दोनों कार्यरत रहते हैं।

सच्ची आत्मा की खोज, जो अत्यंत रहस्यमयी और अकथनीय सम्भावनाओं से और बहुमूल्य आध्यात्मिक ख़ज़ानों से भरी हुई है, जिनका संत–महात्माओं ने सुन्दर ढंग से वर्णन किया है, अब साधक के ध्यान को आकर्षित करती है। यह आत्म–ज्ञान पूर्णतया अनुभव का विषय है, जिसमें तर्क और कल्पना का कोई काम नहीं। यह 'परा–विद्या' है और इसका अनुभव केवल आत्मा कर सकती है, जब वह बाहरी आवरणों से छुटकारा प्राप्त कर नग्न हो जाती है। इस प्रसंग में गुरु नानक देव जी के अनमोल वचन बरबस ज़बान पर आते हैं :

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।।
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार।।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।।
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि।।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौ॰1, पृ.1)

जब सत्य के जिज्ञासु को एक बार विश्वास हो जाता है कि बाहरी ज्ञान–विवेक, कर्मकांड–क्रियाओं से कोई लाभ नहीं, तब वह बड़ी उत्सुकता से अन्दर की खोज में लग जाता है क्योंकि आत्म–ज्ञान ही प्रभु–प्राप्ति की कुंजी है। वह जान जाता है कि आत्म–ज्ञान, प्रभु–ज्ञान की कुंजी है। एक बार सेंट ऑगस्टीन समुद्र के किनारे बैठकर अपनी महान पुस्तक, 'डि ट्रिनिटेट' ('De Trinitate') पर विचार कर रहे थे। उन्होंने एक बच्चे

को देखा कि वह सीपी में समुद्र का पानी भर कर रेत में बनाए गए एक गड्ढे में डाल रहा था। उन्होंने बच्चे से पूछा, तुम क्या कर रहे हो? बच्चे ने बड़ी मासूमी से उत्तर दिया कि मैं समुद्र को ख़ाली करना चाहता हूँ। उस महान संत ने उसे समझाया कि यह तो असंभव है। ठीक यही बात ईश्वरीय ज्ञान के बारे में भी कही जा सकती है क्योंकि उस अनंत प्रभु को यह सीमित मानव बुद्धि के बल से नहीं समझा जा सकता। एक अंश पूर्णत्व को कैसे जान सकता है? आत्मा, जो संपूर्ण चेतन सृष्टि का आधार है, को मन और बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। कोई वस्तु, जो स्वयं सत्य पर आधारित नहीं, वह सच्ची नहीं हो सकती, और न ही वह सत्य को कभी जान सकती है। जैसा कि योग के जनक, ऋषि पांतजलि के पूर्ववर्ती, गौड़पाद जी ने कहा है, यौगिक साधन भी मन को खड़ा नहीं कर सकते, जैसे कि कोई घास के तिनके द्वारा बूंद–बूंद करके समुद्र को ख़ाली नहीं कर सकता।

उपरोक्त से यह भली–भाँति स्पष्ट हो जाता है कि सभी धर्मों के बीज महापुरुषों द्वारा किए गए आत्म–चिन्तन और आत्म–साक्षात्कार में छुपे हैं। यहाँ आकर सब दर्शन शास्त्रों का अन्त होता है और वास्तविक धर्म का उदय होता है। आंतरिक खोज शनैः शनैः आगे बढ़ती है, और आत्मा अपने ऊपर चढ़े आवरणों (कोश) का विश्लेषण करके, एक–एक करके उन्हें पार करके उतारती जाती है। इनका अनावरण तब होता है, जब मन पूर्ण रूप से शांत–स्थिर होता है। अंततः मन रूपी आवरण स्वयं भी एक फटे पुराने चिथड़े की भाँति आत्मा से गिर जाता है और तब मुक्त होकर, आत्मा अपने चिर–पुरातन ज्योतिर्मय सौन्दर्य को प्राप्त कर लेती है, जिसका प्रकाश कई सूर्यों के प्रकाश से भी ज़्यादा तेज़ होता है। इसे ही 'आत्मा का विकास' या 'सत्य का प्रकट' होना कहा जाता है। यह आत्म–सिद्धि परमात्म–सिद्धि से पहले आती है।

जिस समय आत्मा अपने सभी बन्धनों से स्वतन्त्र होकर अपने ऊपर से स्थूल, सूक्ष्म और कारण के आवरण उतार देती है, तभी वह सत् अर्थात परमात्मा को समझने और उसका अनुभव करने के लायक़ होती है। मन, इंद्रियाँ तथा बुद्धि, अपने ठोस मायावी प्रकृति के कारण,

तर्क–वितर्क, दर्शन या बौद्धिकता द्वारा प्रभु को जानने और पाने में सदा ही असमर्थ हैं। केवल आत्मा ही अपनी विशुद्ध अवस्था में सब आवरणों से स्वतन्त्र होकर प्रभु का अनुभव पा सकती है। आध्यात्मिकता न तो ख़रीदी जा सकती है और न ही सीखी जा सकती है; यह केवल किसी अनुभवी पूर्ण पुरुष की संगत में पूर्ण श्रद्धा व प्रेम से, छूत की बीमारी की भाँति पकड़ी जा सकती है। मात्र पुस्तकों, व्याख्यानों या दार्शनिक तथ्यों द्वारा प्राप्त ज्ञान, किसी भी व्यक्ति को आध्यात्मिक नहीं बना सकता।

प्रभु–प्रेम को किसी प्रभु–पुत्र की प्रेम–रस भरी आँखों में देखा जा सकता है। उसकी नशीली आँखों से आध्यात्मिक नशे की झलक प्राप्त होती है। वे प्रभु के जीवन, प्रेम तथा ज्योति के छलकते पैमाने होते हैं। यही अन्तर है एक ओर, संसार के तथाकथित धर्मों व उनके (बीते युगों के पावन व विशालकाय, अति पुरातन और समझ पाने के लिए अति गूढ़ भाषाओं में लिखे गये) ग्रंथों या साम्प्रदायवाद में और दूसरी ओर, आत्म–विद्या या आत्मा के असली धर्म, अध्यात्म में। आध्यात्म संपूर्ण मानव जाति की साँझी विरासत है, जो अपने दृष्टिकोण में सार्वभौमिक, अपने विस्तार में असीमित तथा किसी एक के माने हुए मान्यता, विश्वास व धार्मिक धारणाओं से बद्ध नहीं है। यह आत्मा की एक आंतरिक प्रक्रिया है और सभी संत इसी अध्यात्म को विशुद्ध, मिलावटरहित व अमिश्रित रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्रभु वह दैवी धरातल है, जिस पर जीव, मन और माया अपना–अपना खेल–खेल रहे हैं, पर ये सब अपने जीवनाधार, प्रभु को स्वयं जानने में असमर्थ हैं। इसलिए संत कहते हैं कि इस दैवी धरातल का परिचय तभी संभव है, जब मानव अंतर्ज्ञान व अभ्यास द्वारा अपने आंतरिक चक्षु या छठी इन्द्री से प्रत्यक्ष देखने योग्य हो जाता है। इस आंतरिक आँख को 'नुक़्ताए सवैदा', 'तीसरी आँख', 'दिव्य चक्षु', 'Single Eye' आदि नामों से भी पुकारा जाता है। मसीह का कहना है :

यह आँख सारे शरीर को ज्योतिर्मय कर देगी।

– पवित्र बाइबिल (लूका 11:36)

यह अकृत्रिम, शाश्वत, अनंत दिव्य ज्योति, जो स्वयं विद्यमान व छाया रहित है, जो न तो धरा पर, न ही समुद्र में पाई जाती है। इसलिए महात्मा ईसा ने लोगों को सचेत (होशियार) करते हुए ख़बरदार करा है कि इस ज्योति पर जो तुम्हारे अन्दर है, कहीं स्याही का पर्दा न पड़ जाए :

प्रकाश अंधेरे में प्रज्ज्वलित हो रहा है और अंध. कार उससे जानता तक नहीं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:5)

इस ज्योति के बाहरी प्रतीक हम आज गिरजाघरों में मोमबत्तियों, मंदिरों और गुरुद्वारों में दीपकों के रूप में (जिसकी जगह आजकल विद्युत ने ले ली है) और पारसियों के अगियारी (मंदिर) व घरों में हमेशा जलने वाली अग्नि के रूप में देखते हैं।

इस दिव्य चक्षु की तरह ही ईश्वरीय ध्वनि की धारा भी बह रही है। इसे मुसलमान धर्मग्रंथों में 'कलमा', बाइबिल में 'Word', वेदों में 'श्रुति', उपनिषदों में 'उद्गीत', जरथुस्त ग्रंथों में 'सरोशा', पश्चिमी दर्शन शास्त्रों में 'Elan Vital' (जीवन धारा) और ब्रह्मविद्या–वादियों (Theosophists) द्वारा 'Voice of the Silence' (शांति की ध्वनि) आदि नामों से पुकारा गया है। इस ध्वनि की धारा हमारे शरीर में निरंतर बह रही है, परन्तु दुर्भाग्यवश हम इसे सुन नहीं सकते, क्योंकि हमारे आध्यात्मिक कानों को मोहरें लगाकर बंद कर दिया गया है। इस महान सत्य का प्रतीक मंदिरों में शंखों, गुरुद्वारों तथा बौद्ध धर्मस्थानों में घड़ियालों, गिरजों में घंटियों तथा सूफ़ियों के यहाँ बड़े घंटों (जरस) के रूप में दिखाई देता है। प्रत्येक युग में आए महापुरुषों ने अपने प्रवचनों तथा लेखों में इस बारे में बार–बार इशारे दिए हैं।

वास्तविक धर्म या अध्यात्म, आत्मा का परमात्मा में, या'नी उसके प्रकट रूप– ध्वनि और ज्योति में अभेद्य होना है, जो कि प्रभु द्वारा बनाये गए इस शरीर रूपी हरि–मंदिर में विद्यमान है। जैसे–जैसे आत्मा बाहर से हटती जाती है और स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण की सीमाओं से ऊपर उठकर अन्तर में चढ़ाई करती जाती है, तो गुरुकृपा से अध्यात्म के क्षेत्र में उसे उतना ही अधिक अनुभव प्राप्त होने लगता है। ऐसी कृपा

उस व्यक्ति पर होती है, जो इच्छानुसार जीते–जी मरने के लिए तैयार होता है, क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति जीते–जी मरना न सीख जाए, वह अमर जीवन प्राप्त नहीं कर सकता। बर्गसन नामक एक बड़े दार्शनिक ने इसको 'खुला धर्म' कहा है, जो उनकी भाषा में, 'बंद धर्म' के बिल्कुल विपरीत है। यह 'बंद धर्म' वह धर्म है, जिसको प्राचीन और अटल माने जाने वाले धर्मग्रंथों की जकड़नों में पूर्णतया सीलबंद कर दिया गया है, और जिसको अन्तिम सत्य मान लिया गया है।

आजकल धर्म शुभ कर्म करने तक ही सीमित हो गया है– जैसे दान–पुण्य करना, रीति–रिवाज़ों को मानना, व्रत रखना, तीर्थ यात्रा करना, सफ़ेद, पीले, नीले या गेरुए वस्त्र धारण करना, शरीर पर किसी विशेष प्रकार के चिन्ह बनाना, उदाहरणतया सिर पर चुटिया रखना, तिलक लगाना, यज्ञोपवीत धारण करना, खतना, पाँच कक्के रखना आदि, परन्तु ये सभी कर्मकांड आत्म सिद्धि या प्रभु प्राप्ति में नाम मात्र के भी सहायक नहीं।

आज आवश्यकता है, जीवित सत्य की— जीवन के सागर में स्नान करने की, जीवन के अमृत का रसपान करने की और दैवी प्रकाश का अनुभव करने की, जो आत्मा को परमात्मा में अभेद करके अमरत्व प्रदान कर सकते हैं। श्री अरविन्द भी यही कहते हैं : "दैवी मन से संपर्क करो और उससे समस्त जीवन, माया और प्रकृति को दिव्य बना लो। यह सृष्टि के सभी जीवों का जन्मसिद्ध अधिकार है और इस पर किसी विशेष राष्ट्र, वर्ग या धर्म के मानने वालों का एकाधिकार नहीं।"

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो कि शरीर, मन तथा आत्मा के मेल से बना है। परमात्मा ने मनुष्य को अपने ही रूप पर बनाया है। इसलिए संतों ने आदेश दिया :

> **तुम उतने ही पूर्ण बनो, जितना पूर्ण स्वर्गों में स्थित तुम्हारा पिता है।**
>
> – पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:48)

मनुष्य पर परमात्मा की असीम कृपा हुई है, क्योंकि तीनों प्रकार से परमात्मा ने अनंत और अतुल्य संभावनाओं का भंडार उसमें भर रखा

है। दैवी प्रकाश, जीवन और प्रेम के रूप में स्वयं परमात्मा, जो इसकी आत्मा की भी आत्मा है, इसमें विद्यमान है। परन्तु, मनुष्य ने मनुष्य को क्या बना दिया है, बल्कि इससे भी बढ़कर, स्वयं को क्या बना दिया है– अब वह पशुओं से बेहतर नहीं, बल्कि उनसे भी बदतर है।

मानव होने के नाते इसी में उसकी शोभा है कि वह जीवन के तीनों पक्षों (शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक) में उन्नति करे, न कि वह पशुओं के समान विकलांग, विकृत और दीमक–लगे जीवन व्यतीत करे, जैसा कि वह आत्म–ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण आज व्यतीत कर रहा है। इस सृष्टि में दो प्रक्रियाएँ एक साथ काम कर रही हैं : एक विकास की और दूसरी संहार की, एक फैलाव की तो दूसरी सिमटाव की। आत्मा, मन और माया (पदार्थ) को जान देने वाली दिव्यता को फैलना, विकसित होगा पड़ेगा, जब तक कि यह उस दिव्य धरा तक नहीं पहुँच जाती, जो कि संपूर्ण सृष्टि का आधार है और जिसके अज्ञानवश, यह वर्तमान में अपने दैवत्व को भूल कर एक सीमित सी भूमिका अदा रही है।

आत्मा देहधारी बाह्यकरण की दस इन्द्रियों से सुसज्जित है : पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, जो सभी मिलकर शरीर को उसके सांसारिक कार्य–व्यवहार में मदद करती हैं। मन को कार्य करने के लिए चार अंग, अंतःकरण मिले हैं– मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार। ये सभी मिलकर इंद्रिय जगत में काम करते हैं और मन को चिन्तन–मनन करने और फ़र्क पहचानने में सहायक होते हैं। इन सबसे ऊपर आत्मा का स्थान है, जो मन द्वारा संचालित शरीर रूपी रथ की महान सवार है। आत्मा का कार्यकारी रूप सुरत (आत्म–चेतना या महा–चेतना द्वारा प्राप्त ध्यानशक्ति) है। यदि सुरत को सही प्रकार की सहायता तथा प्रेरणा मिले, तो संकल्प की एकता व लक्ष्य की एकाग्रता बनती है। फिर यह मन की सारी शक्ति को, जो अभी इंद्रियों के घाट पर फैली पड़ी है और भोगों–रसों में लीन होकर जगत का रूप बनी बैठी है, इकट्ठा करके दिव्य–चक्षु पर केंद्रित करने की सामर्थ्य रखती है।

जबकि शरीर कार्य करता है, मन दलीलें देता है और आत्मा आनंद प्राप्त करने की इच्छा रखती है। यदि व्यक्ति के तीनों अंग– शरीर, मन और

सुरत (आत्मा) परस्पर सामंजस्य से एक ही केन्द्र पर एकाग्र हों, तो ऐसी अवस्था में एक बेचारी सीमित और शारीरिक बंधनों में बँधी जीवात्मा का धरती पर जीवन भी शाश्वत और अपरिवर्तनाय रूप से धन्य हो जाता है, जिसमें उस महान चेतनता के समस्त गुण : यथा, सत्, चित् और आनंद स्वयं समा जाते हैं।

एक व्यक्ति, जो अपना ध्यान शरीर को सुदृढ़ बनाने में लगाता है, वह निरंतर प्रयत्नों के द्वारा शारीरिक बल प्राप्त कर लेता है, जिसमें माँस–पेशियाँ पूर्ण रूप से विकसित होकर भली भाँति व्यवस्थित हों। उसे स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से एक पहलवान (शारीरिक पूर्णता का आदर्श) समझ कर उसकी सैंकड़ों लोगों द्वारा, जो उसे निहारते हैं, प्रशंसा की जाती है। इसी प्रकार, जो मनुष्य बुद्धि के विकास में अपना ध्यान लगाता है, वह तेज़, पैनी बुद्धि से बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली बनकर हज़ारों लोगों को अपने प्रभावशाली भाषणों और लेखों से प्रेरित करता है। ऐसे ही, जो व्यक्ति अपनी अन्तर आत्मा के विकास में जुट जाता है, वह एक आध्यात्मिक पुरुष बन जाता है और यथोचित् प्रयत्न करने के पश्चात कुछ समय में स्वयं प्रभु का रूप बन जाता है और फिर, प्रभु की शान उसके रोम–रोम से झलकने लगती है। बड़े–बड़े समूह और श्रोतागण, जो उसके दायरे में आते हैं, उन सभी को वह अलौकिक ज्योति का प्रकाश देता है। साथ ही वह भवसागर के थपेड़ों से पीड़ित तथा पथ भ्रष्ट जीवों के लिए आध्यात्मिक प्रकाश का स्तंभ बनकर उनका मार्गदर्शन करता है। यह एक ऐसा योग है, जिसमें हस्त, हृदय और बुद्धि एक हो जाते हैं तथा मानव को पूर्णरूपेण परिपूर्ण बना देते हैं, जैसा कि सचखंड में स्थित परमात्मा स्वयं परिपूर्ण है।

इन सबकी और इससे भी आधिक्य की प्राप्ति व्यक्ति को तब होती है, जब वह 'शब्द' से जुड़ कर उसका अभ्यास करता है। इसी 'शब्द' को आत्मा का संगीत और 'प्रणव की ध्वनि' भी कहते हैं, जो कि हर व्यक्ति के अन्तर में निरंतर गूँजता रहता है। इसी को 'वास्तविक धर्म' अथवा 'जागृत आत्मा का धर्म' या बर्गसन के शब्दों में 'खुला धर्म' कहते हैं। इससे ऊँचा कोई धर्म नहीं, जो कि सभी को समान रूप से, जीवन

और ज्योति– दोनों प्रदान करे और मानव को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक– तीनों दृष्टिकोणों से ऐश्वर्य सम्पन्न बना कर इस योग्य कर दे कि वह न केवल संगी–साथियों द्वारा पूजा जाए, अपितु देवी देवता भी उसकी पूजा करें, जैसा कि प्रभु ने उन्हें आदेश दिया, जब उसने मनुष्य को अपने अनुरूप बनाया।

यह मानव शरीर सच्चे अर्थ में हरि–मंदिर है, जिसमें आत्मा को दैवी संगीत अर्थात् 'शब्द' के साथ अन्तर में जोड़ कर उसका श्रवण कराया जा सकता है। इसी शरीर में आत्मा अलौकिक ज्योति से प्रकाशित एवं आनंदित हो सकती है एवं प्राचीन पैग़म्बरों के समान दिव्य अनुभव पा सकती है। यदि एक बार आत्मा इस अलौकिक परम आनंद का अनुभव पा लेती है, तो वह संसार के मोह–माया और आकर्षणों से विमुख हो जाती है और सारे भ्रम जंजालों से निकलकर नवजीवन में प्रवेश कर जाती है। यह नवजीवन, इन्द्रियों के विषय–विकारों के जीवन से विपरीत, आत्मा का जीवन है। यही अध्यात्म तथा सच्चा धर्म है, जिसके रहस्यों का अनुभव, प्रभु के साम्राज्य को जाते हमारे अन्तर में मौजूद वज्र कपाट खोल कर, कोई अनुभवी संत–सत्गुरु ही हमें दे सकता है। इसी द्वार का वर्णन करते हुए ईसा ने कहा है :

> **इसे खटखटाओ और यह तुम्हारे लिए खोला जाएगा।**
>
> – पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7)

1. धर्म (बाह्य और आंतरिक):

जबकि स्थूल जगत के विज्ञान हमें ऐन्द्रियजनित स्थूल जगत की ही जानकारी देते हैं, सदाचार के नियम समाज से बंधे व्यक्ति से संबधित हैं, और दोनों के आपसी संबंध के बारे में बने नियम हैं। अध्यात्म या आत्म–विद्या हमें आत्मा के विकास के बारे में बताती है : कैसे आत्मा विभिन्न आवरणों या शरीरों से मुक्त हो सकती है, जिनमें कि यह अभी क़ैद है; इसका परमात्मा से क्या संबंध है और यह कैसे उस दैवी सत्ता

से जुड़ सकती है, जो कि इसका स्रोत है तथा कैसे यह हमेशा के लिए धन्य हो सकती है।

आत्मा का विज्ञान, एक अनुभव सिद्ध ज्ञान है और अन्य सांसारिक विज्ञानों के समान इसके परिणाम भी गणित के यथार्थ की भाँति एकदम सही उतरते हैं : ठीक उसी प्रकार, जैसे दो और दो चार होते हैं। इन परिणामों की सत्यापन हम किसी साधक के जीवन में आये परिवर्तनों से कर सकते हैं। इसका तात्पर्य पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि आत्मा का अपने निज रूप को पाना और ब्रह्मांडीय चेतनता जागृत करके परा–चेतना की अवस्था में जाग उठना है। इस अनुभव को जो प्राप्त कर लेते हैं, वे अनंत शांति की अवस्था से धन्य हो जाते हैं। वे प्रभु की मौजूदगी को हर समय अनुभव करते हैं और वे इस महान सत्य के साक्षी हो जाते हैं कि करनेहार केवल प्रभु है। तर्क और बुद्धि इस अवस्था का वर्णन करने में असमर्थ हैं। प्रभु में अभेद्य हो जाने के पश्चात् भी शब्दों से इस अवर्णनीय अवस्था का वर्णन नहीं हो सकता। इस दैवत्व का अनुभव करने हेतु मन का खड़ा होना और बुद्धि का स्थिर होना अनिवार्यिक है; ऐसी स्थिर अवस्था में ही आत्मा पर प्रभु की 'ज्योति' और 'ध्वनि' (श्रुति) का अवतरण होता है।

सांसारिक ज्ञान प्रभु–ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। हम 'अपरा–विद्या' में पूर्णतया लीन होकर 'परा–विद्या' अर्थात् परे के ज्ञान से बिल्कुल अपरिचित हैं। हम शरीर के रोगों से छुटकारा पाने का हर संभव प्रयत्न करते हैं, पर हमने कभी उन सूक्ष्म रोगों के संबंध में नहीं सोचा है, जिनसे हमारा अंतरभावित है, न ही हमने कभी यह सोचा कि हम मानवता के स्तर से कितने गिर चुके हैं और चाहे–अनचाहे कैसे भवसागर में जीवन के प्रवाह के साथ बेतहाशा बहते जा रहे हैं। हम अपना समस्त जीवन खाने, पीने और सोने में व्यतीत कर देते हैं, किन्तु हम अपने जीवनाधार परमात्मा को जानने की तनिक भी परवाह नहीं करते। इस रमणीय पदार्थशील जगत में पूर्णतया लिप्त होने के कारण हम अंतर्मुख होकर आंतरिक जगत की शान का अनुभव नहीं कर पाते।

जो मनुष्य देखने के लिए बाहरी आँखों पर, सुनने के लिए बाहरी कानों पर और बोलने के लिए बाहरी जिह्वा पर निर्भर रहता है, वह वास्तव में जीवित नहीं, अपितु मृतक समान है; वह एक धौंकनी के समान है, जिसमें हवा भरती और निकलती रहती है। चूँकि प्रभु हमारे अन्तर में विराजमान है, इसलिए उससे मिलने और उसकी दया–कृपा पाने के लिए हमें अपने अन्तर में झाँकना होगा। परमात्मा 'नाम' या 'शब्द' के रूप में सर्वव्यापक है, लेकिन जब तक हम सांसारिक प्रलोभनों से विमुख नहीं होते और अन्तर में आत्मा की अपार शांति में प्रवेश नहीं करते, तब तक हम उस 'शब्द ध्वनि' को नहीं सुन सकते। जैसे–जैसे हम अन्तर में आगे बढ़ते हैं, हम बिना इन हाथों के काम करते हैं, बिना इन पैरों के चलते हैं, बिना इन आँखों के देखते हैं तथा बिना इन कानों के सुनते हैं। गुरु नानक साहिब ने इस विषय में कहा है :

अखी बाझहु वेखणा विणु कनां सुनणा।।
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा।।
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा।।
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा।।

– आदि ग्रंथ (माझ की वार सलोक म॰2, पृ॰139)

इसी बात की पुष्टि गोसाईं तुलसीदास जी ने की है :

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

– तुलसीकृत रामायण (बाल–कांड)

परमात्मा को जानने से पूर्व व्यक्ति को अपने आपको जानना होगा। आत्म–ज्ञान अंतर्मुख होने पर ही संभव है अर्थात् इसके लिए हमें बाह्य पदार्थों में फैली अपनी सुरत को वहाँ से हटा कर अपने अन्तर में, आत्मा के ठिकाने या'नी दिव्य–चक्षु पर एकाग्र करना है, जो कि दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे स्थित है। तभी हमारी आत्मा 'नाम' या इज़हार में आई प्रभु–सत्ता का अनुभव पाती है, जो कि सारी धार्मिक खोजों का सार है। महात्मा बुद्ध ने भी यही गवाही दी है कि परमात्मा की उच्चतम ऊँचाई तक पहुँचना तभी संभव है, जब अपने अन्तर में चढ़ा जाए। शोपेनहोयर

नामक एक प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक ने पुकार कर कहा कि संपूर्ण शांति और प्रशांत अवस्था के स्रोत का अनुभव मानव अपने अन्तरतम में कर सकता है। क्राइस्ट ने बड़े प्रभावशाली शब्दों में कहा,

प्रभु का साम्राज्य तुम्हारे अन्तर में है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 17:21)

सिक्खों के धर्मग्रंथ में कहा गया है,

काइआ अंदरि अंम्रित सरु साचा मनु पीवै भाइ सुभाई हे।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1046)

कोई भी व्यक्ति घर–बार को छोड़े बिना, बाल–बच्चों तथा संबंधियों से नाता रखते हुए और अपनाई हुई शैली द्वारा जीवनयापन करते हुए, इस अन्तर की यात्रा पर जा सकता है। आत्मा की यह महान तीर्थ यात्रा दुनियावी कामकाज करते हुए भी पूरी की जा सकती है। ज़रूरत केवल इस बात की है कि किसी ऐसे जीवित सत्गुरु, जिसके पास प्रभु के राज्य में प्रवेश करने की कुंजी है, से मदद ले ली जाए। गुरु नानक ने कहा है :

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति।।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुक्ति।।

– आदि ग्रंथ (गूजरी वार म॰5, पृ॰522)

इसके लिए या'नी प्रभु को पाने के लिए घर–बार छोड़कर जंगलों की राह लेने की ज़रूरत नहीं। यह संपूर्ण रहस्य पूर्ण रूप से मन की शांत अवस्था में खुलता है। गुरुवाणी में कहा है :

सो इकांती जिसु रिदा थाइ।।

– आदि ग्रंथ (बसन्त म॰5, पृ॰1180)

साधक अभ्यास करके, जीवन की भीड़–भाड़ में रह कर भी, मन को शांत कर सकता है और अपनी इच्छा से, जब चाहे, शांत आध्यात्मिक मंडलों में अवकाश ग्रहण भी कर सकता है। यदि मन शांत नहीं, तो जंगलों में या नदी के किनारे रहना भी निरर्थक होगा।

प्रत्येक धर्म के दो पहलू होते हैं– एक सामाजिक, दूसरा आध्यात्मिक।

सामाजिक पहलू में चरित्र निर्माण के लिए सदाचार के नियमों को बनाया जाता है, ताकि समाज की प्रचलित बुराइयों और कुरीतियों को दूर करके उसे स्वस्थ तथा प्रगतिशील ढंग से चलाया जा सके। इसके लिए कुछ रीति–रिवाज़ों का पालन करना तथा दान पुण्य आदि क्रियाओं का करना भी सिखाया जाता है। इन साधनों के द्वारा व्यक्ति सिर्फ़ ऊँचे आध्यात्मिक जीवन के लिए आधार तैयार कर सकता है। धर्मों के आध्यात्मिक पहलू का संबंध मुख्यतः आत्मा से है— आत्मा का क्या स्वभाव है, इसका मन और शरीर से क्या संबंध है, कैसे यह इन दोनों से मुक्त हो सकती है और कैसे यह 'नाम' या 'शब्द' के साथ जुड़ सकती है, ताकि यह अपने आपको जानकर चेतनता के महान समुद्र में अभेद्य हो सके।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, पर समाज भी अध्यात्म रूपी चट्टान की नींव पर ही सुव्यवस्थित चल सकता है। जिस प्रकार से आत्मा मानव शरीर को जीवन देती है, ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिकता समाज को जीवन तथा सहारा प्रदान करती है। इसका पतन होने पर विचारों की संकीर्णता, पक्षपात, स्वार्थपूर्ति, लड़ाई व संघर्ष आदि सामाजिक बुराइयाँ धीरे–धीरे समाज के रोम–रोम में समा कर पूरे समाज को हीन, पंगु, ख़राब तथा भ्रष्ट बना देती हैं।

आजकल सामाजिक सुधार की कोई कमी नहीं, परन्तु जिस बात की हमें सख़्त ज़रूरत है, वह है स्वयं के सुधार की। समाज ने विज्ञान, कला, राजनीति, दर्शनशास्त्र आदि क्षेत्रों में महान प्रगति की है। हमने प्रकृति के अनेकों रहस्यों की केवल खोज ही नहीं की, बल्कि प्रकृति की कई शक्तियों को अनुशासित करके उनका उपयोग अपनी सेवाओं के लिए भी किया है। पर यह कहने में संकोच नहीं कि इस सारी उन्नति की हमने एक भारी क़ीमत चुकाई है और एक महान बलिदान किया है– अपनी आत्मा का बलिदान। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि ऐसी भौतिक प्रगति और ऐशो–आराम के सामानों की बहुतायत होने पर भी मानव ख़ुशी तथा शांति से कोसों दूर है, जैसे कि हम पहले थे। बाइबिल में भी कहा है :

यदि मनुष्य संसार की सारी दौलत पा भी ले,

परन्तु वह अपनी आत्मा को खो बैठे, तो उसे भला क्या लाभ होगा?

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 16:26)

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को चाहिए कि सबसे पहले वह अपने आपको जाने तथा सत् का अनुभव करे। एक बार इस वास्तविकता को पाने के बाद इस बात से अन्तर नहीं पड़ता कि वह गृहस्थी रहता है या फिर संसार छोड़कर घर से बाहर सन्यास लेकर रहता है। संतों का मार्ग शुद्ध अध्यात्म का है। यह ठीक है कि संतों को भी किसी न किसी समाज में रहना पड़ता है, परन्तु उनका एकमात्र उद्देश्य अंधकार में डूबे देहधारी जीवों को सत् से जोड़ना है। वे इस कार्य को सुरत–शब्द योग के द्वारा करते हैं।

सभी संत हमें प्रभु की सेना में भरती होने का आह्वान करते हैं और वे विभिन्न सामाजिक धर्मों को इस सेना में भर्ती करने के केन्द्र मानते हैं। इसीलिए वे अपने आपको सामाजिक कलह, जाति भेद और धार्मिक प्रत्यारोप से दूर रखते हैं। वे प्रचलित धर्मों को ख़त्म करने या नये धर्म बनाने नहीं आते, बल्कि वे प्रचलित धर्मों को विकारों से मुक्त करके, पुनः उनको उस गौरवपूर्ण स्थान पर पहुँचाने आते हैं, जिस पर उन धर्मों के प्रर्वतकों ने उन्हें शुरू में पहुँचाया था। इतना ही नहीं, वे इन मतों के चारों ओर की बेकार रूढ़ियों को भी साफ़ करने का प्रयत्न करते हैं, जिनमें लोग सदियों से जकड़े हुए हैं। इस प्रकार वे इनको उस कीचड़ में से, जिसमें वे डूब रहे होते हैं, निकाल कर उनकी मृत प्रायः नाड़ियों में आध्यात्मिकता का ताज़ा ख़ून चढ़ाकर उनमें पुनः प्राण संचारित करते हैं।

सभी धर्मों की तह में पुरातन सत्य तथा आध्यात्मिक परम्परा होती है, पर ये दोनों समय के साथ–साथ लगभग लुप्त हो गए हैं। आज के धर्म रीति–रिवाज़ों के बाहरी खोल (आवरण) के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गए हैं। लेकिन संत–जन स्वयं उस सत् का अनुभव करते हैं, जिसका वर्णन प्राचीन काल के ऋषियों–मुनियों ने धर्मग्रंथों में किया है। इस प्रकार संतों की तालीम, न तो किसी एक धर्मग्रंथ पर आधारित है और न ही वे स्वयं किसी धर्म की जकड़ों में बँधे होते हैं। वे केवल परा–विद्या से

संबंध रखते हैं, जो कि आत्मा का विज्ञान है। परा–विद्या का क्षेत्र विचार, तर्क तथा बुद्धि– तीनों से परे है। यह ज्ञान, इसका अनुभव और इसका साक्षात्कार कहीं से पढ़ा या सीखा नहीं जा सकता, लेकिन इसको किसी ऐसे व्यक्ति से, जो इससे (आत्म–ज्ञान) भरपूर है, जुड़कर छूत के रोग के समान पकड़ा जा सकता है।

लोग जब किसी संत–सत्गुरु के संपर्क में आते हैं, उनके विवेकशील प्रवचनों को सुनते हैं, उनके सत्संगों में उपस्थित होते हैं और उनकी शिक्षा का अक्षरशः (अक्षर व भाव सहित) पालन करते हैं, तो वे रूहानी रास्ते पर चलने लगते हैं। इस प्रकार संत आत्मा को आकर्षित करके उसमें पुनः जीवन धारा को प्रवाहित कर उसे दिव्य बना देते हैं, जिससे मन भागने–दौड़ने से रुक जाता है और सदा–सदा के लिए माया और जड़ संसार के थपेड़ों से अप्रभावित रह पाता है। इस प्रकार, आत्मा स्थूल जगत के बंधनों से मुक्त होकर स्वेच्छा से मानव सक्षमता के परे के आध्यात्मिक मंडलों में जाने योग्य हो जाती है। ये मंडल मन–बुद्धि की पहुँच से परे हैं और सिर्फ़ आत्मा ही इनका अनुभव करती है। जब तक आत्मा दिव्य मंडलों के अनुभव में लीन रहती है, गर्त्त में असहाय होकर पड़ीसभी बहिर्मुखी शक्तियाँ (इंद्रियाँ, मन, बुद्धि) अब गतिशील नहीं रहतीं।

सभी संतों की आध्यात्मिक शिक्षा प्रत्येक युग तथा देश में मूलतः एक ही रही है, चाहे उनकी भाषा व शब्दावली में देश–काल के अनुसार अन्तर रहा हो। संत–जन अध्यात्म का संदेश लेकर आते हैं और उनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्यों को आत्मिक विकास व निखार के आत्मरस से परिपूर्ण करना है। इसीलिए उनकी शिक्षा, जो किसी बाहरी मदद पर आधारित नही है, को 'इल्मे–सीना' या 'इल्मे–लादुन्नी' अर्थात् 'आत्मा का ज्ञान' या 'वास्तविकता का ज्ञान' आदि नामों से भी पुकारा जाता है। यही सारे ज्ञानों का सार है और इसी ज्ञान के द्वारा शेष सब कुछ जाना हुआ हो जाता है। यह सबसे सहज (प्राकृतिक) विज्ञान है। प्रकृति की अन्य देनों– प्रकाश, वायु तथा जल आदि के समान यह भी मुफ़्त है। यह सारी मानव जाति की साँझी पूंजी है और इस पर हर किसी का समान रूप से

अधिकार है। संत ज्योति स्वरूप होते हैं और इसी ज्योति को सृष्टि में फैलाने आते हैं। बाइबिल में कहा गया है :

> **मैं संसार की ज्योति हूँ और जो कोई मेरी आज्ञानुसार मेरे पीछे चलेगा, वह अंधकार में नहीं रहेगा, बल्कि जीवन के प्रकाश को प्राप्त करेगा।**
>
> – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8:12)

2. विज्ञान तथा धर्म :

वैज्ञानिकों के विचार में धर्म मात्र अंधविश्वासों की एक गठरी है और धर्म के बिना भी व्यक्ति उतना ही संतोषप्रद एवं शांत रह सकता है, जितना कि एक धर्म में विश्वास रखने वाला। नास्तिक अर्थात् ईश्वर को न मानने वाले इस कथन पर ज़ोर देते हैं कि लोगों को भुलावे में रखने के लिए धर्म 'अफ़ीम की गोली' है। दूसरी ओर धर्म के मानने वालों का कहना है कि विज्ञान अपने आविष्कारों के ज़रिये घातक और विनाशकारी हथियारों के माध्यम से संसार में कभी न मिटने वाले भेद–भाव, असंतोष और विनाशकारी उथल–पुथल का जन्मदाता है। वैज्ञानिक मानते हैं कि व्यक्ति शरीर तथा मन रखता है और यदि वह मन को क़ाबू में कर ले, तो आत्मा, अगर उसका कोई अस्तित्व है, तो वह अपने आप क़ाबू में आ जाएगी। वे आत्मा और परमात्मा, दोनों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं।

संतों के लिए केवल आत्मा ही यथार्थ है, परन्तु यह (आत्मा) शरीर और मन की क़ैदगाह में है। संतों का मिशन इस आत्मा को, जो अनेकों आवरणों में लिपटी पड़ी है, मुक्त करवा कर उसे 'नाम' या 'इज़हार में आई प्रभु–सत्ता' के साथ, जिससे कि वे स्वयं भी जुड़े होते हैं, जोड़ना है। आत्मा का यह विकास ही सही अर्थों में मोक्ष है, परन्तु बहुत ही कम लोग इसके सही महत्त्व को समझते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अपने को पत्थर जैसा जड़ बना लेना ही मुक्ति है, जब कि कुछ और लोगों का विचार है कि मोक्ष सबको 'शून्यवाद' या 'नास्तिकवाद', जिसका अर्थ है किसी चीज़ के अस्तित्व में विश्वास न करना और सदाचार, नैतिक अथवा धर्म संबंधी नियमों का बष्हिकार करना, की ओर ले जाता है;

लेकिन ये दोनों ही विचार सत्य से बहुत दूर है। वास्तव में 'मन' शरीर तथा शारीरिक संबंधों को आपस में जोड़ने वाली कड़ी है, और यही बंधन का कारण भी है; जबकि इस बंधन को तोड़ देने का नाम ही 'मुक्ति' है। इस मार्ग का प्रारंभिक क़दम गुरु–भक्ति है, जो किसी जीवित संत–सत्गुरु के प्रति दृढ़ प्रीति पैदा करने से प्राप्त होती है। अगला क़दम 'नाम' या 'शब्द' का अभ्यास है, जो अंत में 'सचखंड' या 'मुकामे–हक़' की ओर ले जाता है। हाफ़िज़ साहिब ने कहा है :

हाफ़िज़ा ख़ुल्दे-बरीं ख़ानाए मौरूसे-मन अस्त।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.294)

अर्थात् ऐ हाफ़िज़, सचखंड हमारा मौरूसी (पैतृक) घर है।

यदि कोई गहराई एवं गंभीरता से दोनों– धर्म और विज्ञान के लाभों और उनकी सीमितताओं पर विचार करे, तो पता चलेगा कि दोनों में गहरा आपसी संबंध है। वातावरण सारे जीवित पदार्थों पर दो प्रकार से असर करता है– आंतरिक और बाहरी, जो दोनों सार्वभौमिक हैं। मनुष्य को ज्ञान, तर्क और विवेक की शक्ति दी गई है (जो अन्य जीवों में नहीं है), जिनके द्वारा वह अपने वातावरण को नियंत्रित करता है। कोई एक व्यक्ति तभी तक ख़ुश रहता है, जब तक उसके भीतरी और बाहरी संबंधों में समन्वय बना रहता है। यदि वस्तुएँ उसकी इच्छानुसार होती रहें, तो उसे सुख तथा संतुष्टि प्रतीत होती है। अनुभव बताता है कि सदैव अभिलाषी रहने वाले मनुष्य और वातावरण के बीच में समन्वय एक जैसा नहीं रहता और अधिक समय तक नहीं रह पाता। इसके विपरीत, ये दोनों सदैव ही बदलते रहते हैं।

सदा से ही मानव एक ऐसे मार्ग को पाने के लिए प्रयत्नशील रहा है, जो कि उसके तथा वातावरण के बीच में एक स्थायी और सर्वोत्तम समन्वय बना सके। इसको पाने का एक ढंग तो यह है कि व्यक्ति बाहर की उन सारी परिस्थितियों को उस सीमा तक नियंत्रित कर ले, जो उसकी ज़रूरतों को, चाहे वे कुछ भी हों, पूरा कर सके। दूसरा तरीक़ा यह है कि व्यक्ति अपने भीतर की प्रवृत्तियों तथा जन्मजात इच्छाओं को इस प्रकार संचालित करे कि बाहर की सदैव बदलने वाली

परिस्थितियों के प्रति उसका भाव अत्यंत उदासीनता का बन जाए तथा बाहर की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होते रहने पर भी वह प्रभावित न हो। पहला ढंग स्वभाव से वैज्ञानिक और दूसरा विशुद्ध रूप से धार्मिक है।

विज्ञान का क्षेत्र परमाणुओं से लेकर विशालकाय सितारों तक फैला है। इसके क्षेत्र के अंतर्गत संसार की वे सभी वस्तुएँ आ जाती हैं, जो मनुष्य की इंद्रियों तथा भावनाओं को प्रभावित कर सकती हैं। इसमें वास्तव में वह सब कुछ आ जाता है, जिसका ज्ञान इंद्रियों के द्वारा संभव है। दूसरी ओर, अन्तर की दुनिया स्वभाव में बिल्कुल भिन्न तथा अद्‌भुत है। हमारी इंद्रियाँ, जो कि भौतिक जगत में प्रशंसनीय कार्य करती हैं, आसानी से अंतर्मुख होकर अन्तर के जगत की थाह पाने में सक्षम नहीं हैं। यह आंतरिक संसार आध्यात्मिकता की अनेकानेक संभावनाओं से और अथाह तथा अकथनीय ख़ज़ानों से भरपूर है, जो सभी हर मनुष्य की पहुँच व पकड़ में है, यदि वह अपने अन्तर में जाना सीख जाए।

भौतिक पदार्थों की मात्रा तथा क़ीमतें अनुपाती होती हैं। उदाहरणस्वरूप, दो आधी रोटियाँ मिलकर एक पूरी रोटी होती है, परन्तु दो अर्ध बुद्धि वाले व्यक्ति मिलकर एक बुद्धिमान व्यक्ति नहीं बना सकते। इतना ही नहीं, भौतिक जाँच-पड़ताल करने में सहायता करने के लिए हमारे पास अनेक यंत्र तथा औज़ार हैं और उस जाँच को करते समय जो परिणाम प्राप्त होते हैं, वे दोबारा से जाँचने पर खरे उतरते हैं। ये सभी तथ्य वैज्ञानिक सत्यों के महत्त्व को बनाने में सहायक होते हैं। वैज्ञानिक प्रयोग प्रतिदिन होते रहते हैं और आगे भी बराबर होते रहेंगे। विज्ञान में जो आज सत्य है, संभवतया कल वह सत्य न रहे, परन्तु धर्म में ऐसा नहीं होता। सत्य, सत्य ही है; सत्य हमेशा से सत्य रहा है, पहले भी सत्य ही था तथा भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। सच्चा धर्म जन्म-जात प्रवृत्तियों तथा मन में स्थित बुराइयों का दमन करके और अन्ततः मन को प्रतिदिन बदलने वाली बाहरी परिस्थितियों के प्रति बिल्कुल उदासीन करके, निरंतर सुख तथा आह्लाद देने की ज़िम्मेवारी लेता है।

धर्म का मार्ग अनेकानेक कठिनाइयों से घिरा पड़ा है। सभी व्यक्ति, जिनमें संत-जन भी शामिल हैं, मरणशील हैं और जब वे इस स्थूल

जगत को छोड़ जाते हैं, तो उनके अनुयायी जोश में अंधे होकर ऐसी ऐसी बातें उनकी शिक्षा में जोड़ देते हैं, जो उन्होंने कभी नहीं कही थीं या जिनका अर्थ वैसा नहीं था, जैसा ये अनुयायी लोग बताते हैं। तथाकथित फ़लसफ़े के ग्रंथ भी इतनी तोड़–मरोड़ और विरोधाभासों से भरे हुए हैं कि पाठक एक घने जंगल में खो सा जाता है।

महापुरुषों जैसी आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुँचने के लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवित महापुरुष के आदेशानुसार अपनी शरीर रूपी प्रयोगशाला में प्रवेश करे और उसमें अन्तर के प्रयोगों को ज़ारी रखे। यह संभव है कि एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त अनुभव किसी अन्य से अलग हो; इसका कारण अपनी–अपनी पृष्ठभूमि और पिछली (पुराने जन्मों की) तैयारी है। इसलिए प्रत्येक के द्वारा प्राप्त परिणाम तथा उसमें लगा समय भिन्न–भिन्न होता है, एक जैसा नहीं– जैसा कि विज्ञान में होता है। इसी कारण संभवतया हम आध्यात्मिक जीवन का अनुभव मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों में की जाने वाली विभिन्न प्रकार की पूजाओं से या विभिन्न धर्मग्रंथों को पढ़ने से प्राप्त नहीं कर पाते। एक जीवित संत, जिसने सफलता पूर्वक शरीर तथा मन के घेरे को पार किया है और सभी बाधाओं एवं सीमाओं के परे, नग्न सत् का अनुभव स्वयं पाया है, हमें उस महान सत्य के बारे में कुछ ठोस बात बतला सकता है। संत, अपने पथ–प्रदर्शन तथा आदेश के द्वारा, आत्मा को शरीर तथा मन के बंधनों से छुटकारा पाने में मदद कर सकता है और अन्तर में वे अनुभव दे सकता है, जिनको उसने स्वयं पाया होता है।

जो काम किसी एक ने कर दिखाया है, उसे दूसरा भी कर सकता है, यदि उसे सही पथ–प्रदर्शन तथा सहायता मिल जाए। गुरु से व्यक्तिगत सम्पर्क, उसकी तवज्जोह, उसके सत्ता युक्त वचन और आकर्षक व्यक्तित्व, सभी मिलकर व्यक्ति की आत्मा को काफ़ी हद तक बदलने में सहायता देते हैं। जो कोई सत्गुरु के दायरे में आ जाता है और उसकी शिक्षाओं को जीवन में उतारता है, वह भी उस अनंत शक्ति से जुड़ जाता है, जिससे सत्गुरु स्वयं जुड़ा होता है और जिसे वह दोनों हाथों से लुटाता है, चारों ओर फैलाता है और जिज्ञासुओं में बाँटता है।

यदि कोई सत्गुरु के प्रति पात्रता या ग्रहणशीलता विकसित कर लेता है, यह लाभ उसे हज़ारों मील की दूरी पर भी मिल सकता है।

जीवन, जीवन से और ज्योति, ज्योति से प्राप्त होता है। यह भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत– दोनों का एक जैसा नियम है। विज्ञान के जैसे, धर्म की तकनीक भी कुछ मूलभूत नियमों पर आधारित है, अन्तर केवल इतना है कि हम अभी तक धर्म की तकनीक से अनभिज्ञ हैं, क्योंकि हमने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है और इसीलिए इसे अपने फ़ायदे के लिए नियंत्रित नहीं कर पाए। मन, वचन तथा कर्म से जीवन की पवित्रता तथा उच्च कोटि का सदाचारी व्यवहार, एक साधक या'नी इस राह पर चलने वाले जिज्ञासु के लिए अति अनिवार्य है। इसके लिए मन को बाहर की सारी बाधाओं, अन्तर के सभी आकर्षणों और वातावरण की चमक–धमक तथा चिंताओं से मुक्त करके, शांत बनाना होता है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे वैज्ञानिक प्रयोग करने से पहले प्रयोगशाला में प्रवेश करके देखता है कि सभी उपकरण साफ़–सुथरे हैं और ठीक ढंग से कीटाणु–मुक्त (sterlized) किए गए हैं या नहीं। इतना ही नहीं, फिर प्रयोग के शुरू होने से पहले सारे खिड़की–दरवाज़ों को बंद कर दिया जाता है, ताकि वैज्ञानिक अपना कार्य करते समय बाहरी प्रभावों से अशांत न हो और ध्यान को एकाग्र कर, अपना कार्य कर सके।

यह प्रतिदिन के अनुभव की बात है कि लोग युगों पुराने रीति–रिवाज़ों का अंधाधुंध पालन करने और प्राचीन परम्पराओं को आँख मूँद कर चलाये रखने में बड़ा गौरव मानते हैं। वे कभी इस बात को जानने की कोशिश नहीं करते कि पुराने सिक्के, चाहे कितने ही अमूल्य हों और ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्व दृष्टि से उनका कितना ही महत्त्व हो, फिर भी उन्हें भट्टी में गला कर फिर से नवीन बनाना पड़ता है, ताकि वे वर्तमान सिक्के बनकर बाज़ार में चल सकें। बीसवीं सदी में यह सबसे अधिक आवश्यक है कि समय के चलते आंतरिक आध्यात्मिक सत्यों के चारों ओर जो अनावश्यक मान्यताएँ लिपट गई हैं, उन्हें परे किया जाए। उन सत्यों पर सदियों से धूल जमते–जमते एक सख़्त आवरण बन चुका है, जिसे साफ़ कर हमें उन सत्यों को जानना होगा और उन्हें समयानुसार

नवीन रूप में प्रस्तुत करना होगा, जो जन साधारण को सही मा'नों में, प्रचलित सिक्कों की तरह से स्वीकार्य हों।

विभिन्न धर्म संस्थाओं में एक–दूसरे के प्रति नासमझी, संकीर्णता तथा ओछेपन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है; ऐसा उन सब धर्मों के प्रवर्तकों ने कभी नहीं चाहा था। ये सब बुराइयाँ उनके बाद उन धर्मों के उत्साही प्रचारकों, प्रखर व्याख्याकर्ताओं तथा ठेकेदारों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति से प्रेरित होकर पैदा कीं कि उन्होंने साधारण मूल सच्चाइयों को अपने उद्देश्यानुसार तोड़–मरोड़ कर पेश किया, ताकि उनको घटिया नाम, यश, शक्ति आदि प्राप्त हो जाए। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि अध्यात्म रूपी प्राचीन अमृत (सोमरस) को सुरागार (cellar) में से निकाल कर नई बोतलों में भर कर पीने वालों को पेश किया जाए, जिसको वे बिना किसी लेबल और ट्रेडमार्क का ध्यान किए तत्परता से पियें और अपनी आध्यात्मिक पिपासा को तृप्त करें।

3. मूर्ति पूजा और ईश्वर-पूजा :

मानव, शरीर तथा आत्मा से मिलकर बना है। जहाँ तक भौतिक देह का संबंध है, वह भौतिक पदार्थों के नियमों– जैसे गुरुत्वाकर्षण (gravity), सम्बद्धता (cohesion), अभेद्यता (impermeability), चालकता (conductivity) आदि से बंधा है। पर साथ ही वह एक प्राणधारी जीव है, इसलिए जैविक नियमों से भी बँधा हुआ है– जैसे पोषण (nutrition), वृद्धि (growth), विकास (development), प्रजनन आदि क्रियाओं द्वारा स्वः–विस्तार (self-propagation) आदि। इसके अलावा, वह चेतन प्राणी है, इसलिए चेतनता के नियम– जैसे भूख, प्यास, बेचैनी तथा आत्म–विकास आदि भी उस पर लागू होते हैं और वह सुखी, बेफ़िक्र तथा चैन से भरे जीवन जीने के लिए कार्य करता है। जब तक व्यक्ति भौतिक सुखों और पदार्थों से बँधा है, वह दुख और पीड़ा से प्रभावित होता है, लेकिन जिस समय वह अपने आपको आत्मा के जीवन्त नियमों के आधीन कर देता है, वह सुखी तथा आनन्दमय हो जाता है। कबीर साहिब ने कहा है :

तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1 (चितावनी और उपदेश 38, पृ.34)

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है कि संपूर्ण भौतिक जीवन दुखों से भरपूर है। गुरु नानक जी ने सारे संसार को अदृश्य अग्नि की लपटों में जलते देखा था।

मूर्तिपूजा भौतिक शरीर के पालन–पोषण और उसे सुसज्जित करने पर ही सारा ध्यान केंद्रित करती है, परन्तु आत्मा को सजाना और उसको ईश्वर के साथ जोड़ना ही वास्तव में ईश्वर भक्ति है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम अपने शरीर में मौजूद आत्मा की ओर से बिल्कुल अनजान हैं और यह नहीं जानते कि इसे कैसे सँवारें, सजायें तथा अलंकृत करें। यह भौतिक शरीर ही वह सच्चा घर है, जिसमें आत्मा निवास करती है। इसलिए उचित यही होगा कि व्यक्ति शरीर की सफ़ाई करने से पहले आत्मा की खोज करके उसे पवित्र करें। इससे इंसान को क्या फ़ायदा होगा, अगर वह घर–बार में झाड़ू लगाकर, उसे साफ़–सुथरा करके अनेक वस्तुओं से सजाये, पर उसके अन्दर रहने वाली आत्मा को भूखी–प्यासी छोड़ दे?

अपनी असली प्रकृति को भूल जाने के कारण हम अपने आपको पूरी तरह शरीर समझ बैठे हैं और इसीलिए हमारे विचार, वचन तथा कर्म सदा शरीर तथा शारीरिक परिस्थितियों और संबंधों तक ही सीमित रहते हैं। जब शरीर का जीवन आधार ही आत्मा है, तो हमें चाहिए कि हम आत्मा का ख़्याल रखें, इसी का विचार करें, इसको स्वस्थ तथा बलवान रखने के लिए समय पर इसे ख़ुराक दें, क्योंकि शरीर की शोभा तथा इज़्ज़त आत्मा के स्वास्थ्य और बल पर निर्भर करती है। सदैव बदलने वाले, जीर्ण होकर मृत्यु को प्राप्त होने वाले इस शरीर की सँभाल इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह ठीक ठाक चलता रहे– जैसे कि किसी स्वचालित वाहन (मोटर आदि) की संभाल जाती है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम केवल इसके पालन–पोषण तथा सजाने में हर समय लीन रहें, जिससे इसमें मौजूद जीवन ज्योति ही समाप्त हो जाए, वही जीवन ज्योति (आत्मा), जो कि प्राण–शक्ति के द्वारा जड़ पदार्थ में जीवन

का संचार कर उसे चला रही है। इस सत्ता के न रहने पर इस शरीर का कोई मूल्य नहीं रहता, बल्कि तब इसको अग्नि या कब्र के हवाले करना ही उचित समझा जाता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम प्रभु के अंश हैं और हम इस भौतिक शरीर रूपी घर से, जो थोड़े समय के लिए हमें रहने को मिला है, पूरी तरह से भिन्न हैं। हम सब की शोभा इसी में है कि हम उस 'जीवन धारा' के बारे में सब कुछ जानें, जो समस्त सृष्टि में व्याप रही है, यह जानें कि इस जीवन धारा का स्रोत क्या है, और कैसे हम उस स्रोत (प्रभु) तक पहुँचकर अनंत शांति व सुख पा सकते हैं, जिस पर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसे जीवन की महान शिक्षा किसी संत से ही सीखी जा सकती है। इसकी क–ख–ग इच्छाजनित रूप से इंद्रियों के घाट से ऊपर आकर शुरू होती है, जब तक ध्यान, सब तरफ़ से हटकर, दो–भ्रूमध्य, आत्मा के ठिकाने पर टिक नहीं जाता। लेकिन यह सब वक़्त के पूर्ण संत की दयामेहर से ही प्राप्त होता है, जो कि आत्मिक–विज्ञान के न केवल सैद्धांतिक पक्ष में निपुण होता है, बल्कि उसके व्यावहारिक पक्ष में भी पारंगत होता है और आत्मा को देह–ध्यास से ऊपर लाने में पूर्ण रूप से समर्थ होता है। उसने स्वयं प्रभु का अनुभव किया होता है और दूसरों को भी वही अनुभव दिला सकता है। गुरुवाणी में भी कहा है :

कोई जनु हरि सिउ देवै जोरि।।

– आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰5, पृ॰701)

जब एक बार आत्मा प्रभु से जुड़ जाती है और उसके रंग में रंगी जाती है, तो फिर यह अपने दैवी स्वभाव तथा गुणों को ग्रहण करते हुए दिन–प्रतिदिन विकसित होती चली जाती है। इसको पूर्व व पश्चिम के सभी महात्माओं ने 'दूसरा जन्म' लेना या 'second birth' कहा है, क्राइस्ट ने इसे 'born anew' (नये सिरे से जन्म लेना) कहा है। आध्यात्मिक जन्म के अविनाशी बीज किसी प्रभु–रूप हस्ती द्वारा ही बोये जाते हैं, यदि हम उसके भरोसे रहकर उसके आदेशों का सावधानी से पालन करें और सत् का संग करें– वह सत्, जो इस परिवर्तनशील और रंग–बिरंगी दुनिया में रहते हुए भी अपरिवर्तनीय रहता है।

वह शरीर अति सुन्दर है, जिसमें आत्मा परमात्मा के साथ जुड़ चुकी है। संपूर्ण सौन्दर्य, जिसके अंतर्गत शारीरिक सौन्दर्य भी आता है, आत्मा की सुन्दरता पर निर्भर है और आत्मा की सुन्दरता प्रभु से जुड़कर मिलती है। गुरुवाणी में आया है :

काइआ कामणि अति सुआल्हिउ पिरु वसै जिसु नाले।।
पिर सचे ते सदा सुहागणि गुर का सबदु सम्हाले।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰754)

आगे कहा है :

गुरमुखि होवै सु काइआ खोजै होर सभ भरमि भुलाई ।।
जिसनो देइ सोई जनु पावै होर किआ को करे चतुराई ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰754)

सा काइआ जो सतिगुर सेवै सचै आपि सवारी ।।
विणु नावै दरि ढोई नाही ता जमु करे खुआरी ।।
नानक सचु वडिआई पाए जिसनो हरि किरपा धारी ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰754)

जब एक बार आत्मा अपने निजधाम से परिचित हो जाती है और प्रभु में रंग जाती है, तब वह संसार के बंधनों से स्वतन्त्र होकर जन्म–मरण अर्थात आवागमन के चक्र से हमेशा के लिए मुक्त हो जाती है। लेकिन यह सब पढ़ने–लिखने या चतुराइओं से प्राप्त नहीं होता, बल्कि किसी ऐसे महापुरुष की दया–मेहर से मिलता है, जो मानव चोले में स्वयं परमात्मा होता है और जो हमें भी क्रियात्मक रूप से आत्म–अनुभव देने की सामर्थ्य रखता है।
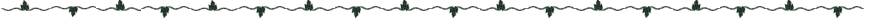
9.

विश्व धर्म का आदर्श

आज के युग की एक महान आवश्यकता संपूर्ण मानव जाति के लिए एक सार्वभौमिक धर्म का निर्माण करना है, जो कि हर धर्म की अच्छाइयों के मिलान से बना हो, परन्तु क्या ऐसा संभव है? स्वभाव तथा विचारों में मतभेद होने के कारण पूजा व भक्ति के ऐसे नियमों का बनाना असंभव है, जो सबको मान्य हों और सबकी पृथक्–पृथक् विचारधाराओं को एक सूत्र में गठित कर दें। किन्तु इतनी विभिन्नता होने पर भी समस्त मानव जाति में एक बात समान रूप से पाई जाती है; यह है वह दैवी धारा, जिसके द्वारा सारी सृष्टि का सृजन हुआ और जो इस सारी रचना को क़ायम भी रख रही है। सभी धर्म ऊपरी तौर पर अलग–अलग (बाहरी रूप और रीति–रिवाज़ों में) होते हुए भी मूल रूप से एक समान हैं। वह दिव्य भूमि, जिस पर प्रत्येक धर्म का ढाँचा खड़ा किया गया है, एक ही है और इस दिव्यता की चट्टान पर ही प्रत्येक द्वारा एक विशाल संरचना खड़ी कर दी गई है।

हमारे सन्मुख एक ऐसे मार्ग को ढूँढ़ने की समस्या है, जिसके द्वारा हम उस आध्यात्मिक भूमि तक पहुँच सकें, जिसकी चट्टान के ऊपर सभी धर्म टिके हैं। प्राचीन भाषाओं का व्यर्थ का शब्द जाल, युगों की उस पर पड़ी हुई धूल तथा पुरोहित वर्ग की हठधर्मी और उनके द्वारा दी गई जड़ नियमावलियों के चलते सभी धर्मों के मूल (आधार) हमारी नज़र से ओझल हो चुके हैं और हम उन्हें पूरी तरह भुला चुके हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इस आधुनिक संसार में, जो वैज्ञानिक ढंग से चलता है, वास्तविक सत्य को पुनः एक बार वैज्ञानिक तरीक़े से पेश किया जाए। धर्म, आत्माओं को शांति प्रदान करने वाला साधन बनने

के बजाय, लोगों को पृथक करने, ईर्ष्या, द्वेष व कपट आदि को पैदा करने एवं अत्याचार करने का एक यंत्र बन गया है। धर्म के पवित्र नाम पर अग्नि तथा हथियार मानव जाति का शोषण कर रहे हैं, भोले–भाले बेक़सूर लोगों का रक्त बहाया जा रहा है और धरती का उज्ज्वल चेहरा विनाश और पतन के द्वारा काला किया जा रहा है। यह सब केवल इसलिए क्योंकि धर्म की ग़ैर–ज़रूरी और बाहरी क्रियाओं पर अनावश्यक ज़ोर दिया गया है। परिणाम यह है कि आज समस्त संसार के लोगों में इन तथाकथित धर्मों का, जो मानव जाति की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल हैं, एक प्रकार का भय पैदा हो चुका है। धर्म को मनुष्य–मनुष्य में, राष्ट्र–राष्ट्र में एकता पैदा करनी चाहिए और समस्त संसार को सार्वभौमिक प्रेम, आत्मीयता और भ्रातृ–भाव के समान सूत्र में बाँधना चाहिए।

अब चाहिए कि धर्म सदाचार और सामाजिक व्यवहार के नियमों तक ही सीमित रहें, जिनमें कि वे पहले से ही बुरी तरह धँसे हुए हैं। लोग भी अपनी–अपनी समाजों में रहने को स्वतंत्र रहें, जिनमें कि वे पैदा हुए हैं और रह रहे हैं, परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे सभी धर्मों के मूल तथ्यों को खोजने तथा जानने का प्रयत्न करें। अन्तर में गहरा गोता लगाकर प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा को दिव्य–सत्ता से जुड़ने का प्रयत्न करना चाहिए और समस्त सृष्टि में व्याप्त उस कड़ी को पकड़ना चाहिए, जो सबका जीवन आधार और मूल कारण है। जब तक यह सब कुछ विज्ञान के जैसे– सिद्धांत रूप में भी और व्यावहारिक रूप में भी– पेश नहीं किया जाता, लोग सभी धर्मों के मूल सिद्धांतों को सुनने और धारण करने को तैयार नहीं होंगे। लोगों को उन रीति–रिवाज़ों और परम्पराओं से, जिनके साथ उनका पुरातन काल से संबंध रहा है तथा जिनको उन्होंने मज़बूती से पकड़ रखा है, ऊपर उठना होगा।

धर्म असली अर्थों में परमात्मा से एकमेक होने का नाम है। संत सदैव परमात्मा से एकमेक रहते हैं। आध्यात्मिक मंडलों में जो कुछ अनुभव उन्हें प्राप्त होते हैं, उन्हीं का वर्णन मानव जाति की भलाई के लिए उन्होंने धर्मग्रंथों में किया हुआ है। कबीर साहिब ने कहा है :

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै।।

– आदि ग्रंथ (बिभास प्रभाती भगत कबीर, पृ॰1350)

जिस किसी को परमात्मा का अनुभव हो जाता है, वह समस्त मानव जाति से प्रेम करता है। वह अपने अन्तर में प्रभु को सबके पिता के रूप में और मनुष्य को आपस में भाई–भाई के रूप में प्रत्यक्ष देखता है। इसलिए यह सच है कि जो कोई घृणा का उपदेश देता है और प्रभु की सृष्टि में द्वेष के बीज बोता है, उसे अभी प्रभु का कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं हुआ है।

किसी भी आत्मा को प्रभु का जो व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त होता है, वही वास्तव में सच्चा धर्म है। जब तक धर्मग्रंथों में वर्णित आध्यात्मिक अनुभव किसी जीवित सत्गुरु की दयामेहर से स्वयं हमें प्राप्त नहीं होते, तब तक हम नास्तिक बने रहते हैं और धर्म की यथार्थता को नहीं जान पाते।

परमात्मा ने मनुष्य के स्वरूप को अपने ही अनुरूप बनाया है। इसलिए मानव को यही शोभा देता है कि वह अपने पिता के समान पूर्ण बने। यह तभी संभव है, जब व्यक्ति प्रभु की इच्छा (भाणा) को पहचानना समझे और उसी के अनुसार चलने लगे। यही सच्चा धर्म है, बाक़ी सब धोखा तथा झूठ है।

यदि हम सभी धर्मों के पवित्र ग्रंथों का विश्लेषण करें, तो हमें ज्ञात होगा कि उनमें दिए हुए आध्यात्मिक सत्य, वास्तव में उन धर्मों के प्रवर्तकों (चलाने वालों) के व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभवों पर आधारित हैं। इन महापुरुषों ने सदैव मानव जीवन के आध्यात्मिक पहलू पर ज़ोर दिया है और बताया है कि इस मानव शरीर में 'आत्मा' नामक एक अलग सत्ता है, जो अटल और अविनाशी है। उनका कहना है कि शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों के समान, इस सत्ता का भी विकास, इस सदा बदलने वाले भौतिक दुनिया के शरीर के भीतर किया जा सकता है।

सांसारिक पदार्थों का भोग जीवन का आदर्श नहीं हो सकता। आत्मा का साक्षात्कार ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। सभी धार्मिक पुस्तकें हमें उस राह के बारे में बतलाती हैं, जिसके द्वारा आत्मा 'महाचेतन' अथवा परमात्मा का अनुभव प्राप्त कर सकती है और एक

सच्चा आध्यात्मिक जीवन जी सकती है। लेकिन ऐसा जीवन अंधविश्वास से, रस्मों–रिवाज़ों के श्रद्धापूर्वक पालन से और सामाजिक तथा सदाचारी नियमों के सावधानी पूर्वक पालन ही से नहीं मिलता। 'सत्' को जानना ही सब धर्मों का आदि और अंत है। सभी धर्मों की मूल शिक्षाएँ 'शब्द', 'नाम', 'कलमा' या 'वर्ड' ('Word') के अनुभव पर केंद्रित है– ये सारे नाम उसी एक वस्तु के अलग–अलग नाम हैं, जिसे 'करण–कारण प्रभु सत्ता' या 'Holy Ghost' भी कहा जाता है। आध्यात्मिक प्रगति केवल तभी संभव है, जब आत्मा 'शब्द' के साथ जुड़ती है। इसलिए आत्मा के 'शब्द धुन' से जुड़ने को 'सुरत–शब्द योग' कहते हैं।

हमें सभी धर्मों को प्यार तथा तल्लीनता से पढ़ना चाहिए और सबके दिव्य आधार में पाई जाने वाली सच्चाई को ग्रहण तथा स्वीकार करना चाहिए। विभिन्न धर्मग्रंथ जैसे कि वेद, पवित्र बाइबिल, पाक कुरान, श्री आदि ग्रंथ साहिब, सभी प्रभु की सदा रहने वाली किताब के अनेकों पृष्ठ हैं (संभव है कि आगे आने वाले समय में और भी धर्म पुस्तकें बनें)। भौतिकवाद के इस युग में यह बहुत आवश्यक है कि जो आध्यात्मिक सत्य सबमें समान रूप में पाए जाते हैं, उन्हें एक स्थान पर एकत्रित करके एक सुन्दर गुलदस्ते के रूप में मानव जाति के सामने पेश किया जाए। संसार के आध्यात्मिक दृष्टि से जागृत लोग इस तथ्य की सत्यता को महसूस कर रहे हैं और विश्व के धर्मों के मूल विचार, जो कि सबमें समान हैं, विश्व धर्म सम्मेलनों का आयोजन करके, मानव जाति के सम्मुख रख रहे हैं, जिससे आध्यात्मिकता एक निश्चित विज्ञान के रूप में सत्य की खोज करने वालों के सामने रखी जा सके– वे चाहे किसी जाति या नस्ल के हों और जिस किसी भी समाज में वे रहते हों, उनमें बिना किसी छेड़–छाड़ के। वर्तमान समय में इसी प्रकार के 'विश्व धर्म सम्मेलनों' (World Religions Conferences) का आयोजन, 'विश्व धर्म संघ' (World Fellowship of Religion) की स्थापना, सभी धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए अनेक संस्थाओं का निर्माण और सत्य, प्रेम व अहिंसा जैसे मूलभूत सिद्धांतों पर शोध आदि सब सही मार्ग पर ले जाने वाले क़दम हैं और उस आने वाले समय का इशारा देते हैं, जब कि समस्त संसार प्रेम तथा मानवता के सर्वमान्य धर्म के रेशमी सूत्रों में बँध जाएगा।

10.

अन्तर की एक झलक

हम अपना अधिकतर समय सांसारिक वस्तुओं के बाहरी सौन्दर्य की प्रशंसा करने में व्यतीत कर देते हैं और जड़ में विद्यमान उसके आत्म–तत्त्व को देखने की तनिक भी कोशिश नहीं करते, जो प्रत्येक वस्तु के मूल में गुप्त रूप में छुपा हुआ है तथा अपने 'महान कर्ता' का भेद दर्शाता है, जिसके बिना बाहरी सौन्दर्य भी एक पल के लिए नहीं टिक सकता। और फिर, इस संसार की हर वस्तु और हर जीव का भौतिक शरीर बीमारी तथा क्षय से प्रभावित होता है और अंत में नष्ट हो जाता है, जबकि उसके मूल में एक 'वास्तविक सत्य' है, जो अटल और अविनाशी है। हम वस्तुओं के बाहरी छिलके या खोल को ही अपने विश्लेषण का विषय चुन लेते हैं; हम उसी के रहस्यों की जाँच करने में व्यस्त हैं तथा इन प्रयत्नों में लगे हैं कि उससे कैसे लाभ प्राप्त किया जा सकता है। प्राकृतिक उपहारों को अपनी आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाने के हमारे प्रयत्न काफ़ी हद तक सफल हो चुके हैं, परन्तु हमने प्रत्येक वस्तु और समस्त रचना का जो आदि और अंत है, उस सर्वव्यापी सत्ता की खोज की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

वही व्यक्ति बुद्धिमान है, जो सीप में से मोती निकालता है और उसके बाहरी खोल या'नी सीप से कोई संबंध नहीं रखता। प्रकृति ने बाहर के सभी आवरण इस लिए प्रदान किए हैं, ताकि उनके अन्दर रखी हुई मूल्यवान और असली वस्तुएँ सुरक्षित रखी जा सकें। क्यों न हम संसार की बाहरी चीज़ों का मूल्यांकन करने से पूर्व अन्तर में देखना शुरू कर दें? इस समय हमें जीवन के ऊँचे उद्देश्यों का कोई ज्ञान नहीं है तथा अभी तक हम दाने को भूसे से अलग नहीं कर पाए हैं। चूँकि हम अज्ञान से भरे हैं, हम मूर्खों की भाँति बाहरी चमक–दमक से चकाचौंध हो रहे हैं और

दिखाई देने वाले आकार व रंग–रूप से धोखा खा जाते हैं। हम यह भी नहीं जानते कि हम फैले हुए बुलबुलों के समान हैं, जो केवल क्षण भर के लिए चमकते हैं और आँख झपकते ही झीनी हवा में लुप्त हो जाते हैं।

संतों तथा ऋषि–मुनियों ने अपने अमूल्य लेखों में उस आध्यात्मिक ख़ज़ाने का वर्णन किया है, जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर गुप्त रूप से दबा पड़ा है तथा इस ख़ज़ाने तक पहुँचने का मार्ग बतलाया है, ताकि हम अपने अन्दर की गहराई में गोते लगाकर उसे प्राप्त कर सकें। इस ब्रह्मांड का रहस्य पिंड या शरीर में जाना जा सकता है और पिंड का यह ज्ञान वह कुंजी है, जो सत्गुरु की कृपा से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक– सभी ज्ञान के वज्र कपाट खोल देती है।

प्राचीन लोगों ने मानव के सन्मुख एक महान प्रश्न रखा : "वह कौन सा ज्ञान है, जिसके जानने से बाक़ी सब कुछ जाना हुआ हो जाता है?" फिर तत्काल स्वयं उसका उत्तर भी दिया कि वह 'आत्म–ज्ञान' अर्थात् आत्म–विद्या है। यूनानी तथा लातिनी प्राचीन लोगों ने भी इसी की वक़ालत करते इसे सबसे उत्तम ज्ञान कहा है। इसी को 'परा–विद्या' या परे का ज्ञान भी कहा जाता है अर्थात् ऐसा ज्ञान, जो मनुष्य की इंद्रियों तथा बुद्धि की पहुँच से परे तथा आत्मा का आंतरिक विज्ञान है।

मनुष्य को आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा स्पर्श की पाँच इंद्रियाँ मिली हैं। इनमें से आँख की इंद्री सबसे प्रबल है। इसीलिए आँखों को 'आत्मा की खिड़कियाँ' कहा गया है। आँखें मन की स्थिति को– चाहे वह शांति व धैर्य की हो या फिर क्रोध व बेचैनी की– प्रकट कर देती हैं। आँखों की शक्ति के द्वारा ही एक सम्मोहक (Hypnotist) अपने अधीन व्यक्ति पर नियंत्रण कर लेता है। कई रेंगने वाले जीव भी अपने शिकार को तीव्र दृष्टि के द्वारा आश्चर्यचकित करके विचलित कर देते हैं। यही हालत मछली का शिकार करनेवाले एक बगुले की है। जादूगर भी आँखों के द्वारा अपना काला जादू खेलते हैं। माँ आँखों के द्वारा अपने बच्चे को प्यार देती है। एक पालतू जानवर भी अपने मालिक की प्यार भरी आँखों के द्वारा शांति अनुभव करता है। कवि हँसती आँखें, चमकती आँखें, रसीली (भीगी) आँखें, निराशा भरी आँखें, तेज़ और बोलती आँखें आदि

का वर्णन करते हैं। आँखों की मूक भाषा वास्तव में बड़ी अद्‌भुत है। आँखों से जो ज़ाहिर होता है, उसका वर्णन करने में शब्द असफल रहते हैं। कुछ भी न बोलने पर भी आँखें अनेक भाव प्रकट करती हैं। उनकी मौन भाषा तथा उनका आकर्षण सार्वभौमिक रूप से स्वीकारा गया है और हृदय की गहराई तक पहुँचता है।

जागृत अवस्था में मन तथा आत्मा, दोनों का स्थान दो भ्रू–मध्य और थोड़ा पीछे होता है। स्वप्न की अर्द्ध चेतन अवस्था में यह स्थान कंठ के निकट अवटुग्रंथि (Thyroid Gland) में आ जाता है और गहरी नींद या सुषुप्ति की अचेतन अवस्था में यह और नीचे, नाभि में चला जाता है। चूँकि संतों का मार्ग (या'नी आत्मा का विज्ञान) परा–चेतनता का मार्ग है, इसलिए यह मार्ग सीधे 'तीसरी आँख' या 'नुक़्ताए–सवेदा' या 'दिव्य चक्षु' से प्रारम्भ होकर ऊपर को जाता है (नीचे नहीं), एक मंडल से दूसरे मंडल तक चलता जाता है, जब तक कि यह 'सचखंड' या 'मुक़ामे–हक़' नहीं पहुँच जाता।

यह शरीर हरि–मंदिर है। प्रभु का साम्राज्य हमारे अन्दर है। कहा जाता है कि पिंड (microcosm) में ही सारा ब्रह्मंड (macrocosm) बंद कर दिया गया है। इसलिए ब्रह्मंड का सही ज्ञान केवल पिंड के अन्दर मिल सकता है। एमरसन नामक एक अमरीकी दार्शनिक की बड़ी सुन्दर उक्ति है, 'tap inside' या'नी 'अपने अन्दर झांको'। सृष्टि पाँच मंडलों में विभाजित है : (1) पिंड या स्थूल शरीर (2) अंड या सूक्ष्म शरीर (3) ब्रह्मंड या कारण शरीर (4) पार–ब्रह्म या महाकारण शरीर तथा (5) सचखंड या निजधाम। सचखंड से नीचे के सारे मंडल महाप्रलय या प्रलय के समय नष्ट हो जाते हैं। संतों या पूर्ण पुरुषों का लक्षित निजधाम सचखंड है और इसी मंडल का साक्षात्कार करना उनका ध्येय होता है। सचखंड से पिंड तक, प्रत्येक ऊपरी मंडल के छः चक्रों का प्रतिबिम्ब निचले मंडल के छः चक्रों में ठीक उसी प्रकार दिखाई देता है, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब नीचे रखे पानी से भरे अनेक घड़ों में दिखता है, और फिर इनका प्रतिबिम्ब पास की दीवार पर भी देखा जा सकता है। पिंड के छः चक्र इस प्रकार हैं :

(1) गुदा चक्र (2) इंद्री चक्र (3) नाभि चक्र (4) हृदय चक्र (5) कंठ चक्र (6) आज्ञा चक्र (आँखों के बीच और थोड़ा पीछे)।

योगीजन हठ योग की धौती, नेती, बस्ति आदि क्रियाओं द्वारा पहले स्थूल शरीर को शुद्ध करते हैं और फिर निरन्तर अभ्यास करके, जिनमें प्राणों का संयम या प्राणायाम भी शामिल है, धीरे–धीरे शरीर के उपरो. क्त चक्रों को क्रमशः पार करते हुए ऊपर बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार वे आँखों के पीछे, आज्ञा चक्र में प्रवेश करते हैं। उनकी सारी क्रिया गुदा चक्र से शुरू होती हुई कुंडलनी (सर्पिल शक्ति) योग के द्वारा रीढ़ की हड्डी में से गुज़रती है। इस प्रकार का योग बड़ा कठिन है और अनेक बाधाओं तथा ख़तरों में भरा है। इसमें प्राणों अर्थात् साँस को उचित प्रकार से नियंत्रित करना पड़ता है। यह काम आसानी से नहीं हो सकता, विशेषकर एक सामान्य और गृहस्थी इंसान के लिए इसको सफलतापूर्वक कर लेना बहुत कठिन है और इसमें समय भी अधिक लगता है। वर्तमान युग में संत इस मार्ग को अपनाने के पक्ष में नहीं, क्योंकि आज मनुष्य इस योग के लिए सेहत के दृष्टिकोण से भी अयोग्य है। संत–जन शरीर या पिंड के सारे चक्रों को छोड़कर सीधे आज्ञा चक्र से शुरू करते हैं, जहाँ पिंड तथा अंड दोनों का मेल होता है। इसी स्थान पर जागृत अवस्था में आत्मा का भी निवास है। संत–जन अपने शिष्यों को प्रभु के सिद्ध किए नामों का जाप (सुमिरन), मन ही मन, श्रद्धा और एकाग्रता से करने का आदेश देते हैं। इन नामों के जाप से व्यक्ति अपने चारों ओर की, यहाँ तक कि अपने शरीर की, सुध भूल जाता है। फलस्वरूप उसकी सुरत की धाराएँ (sensory currents) आत्मा के ठिकाने पर एकाग्र हो जाती हैं और यह दिव्य ठिकाना प्रकाशित हो उठता है।

सेंट मैथ्यू ने बाइबिल में इस अवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया है :

> **शरीर का प्रकाश आँख है, इसलिए यदि तेरी आँख एक हो जाए तो तेरा सारा शरीर प्रकाश से भरपूर हो जाएगा।**
>
> – पवित्र बाइबिल (मत्ती 6:22)

संत तुलसी साहिब ने इस संबंध में कहा है :

पुतली में तिल, तिल में भरा राज़ कुल का कुल।
इसी परदाए-सियाह के ज़रा पार देखना।।

अर्थात् आँखों की पुतली में एक ख़ाली जगह है, जिसे 'तिल' कहते हैं, उसमें सारा गुप्त भंडार भरा है, जिसका तुम पता नहीं लगा सकते। यदि तुम भीतर देखना चाहो, तो उस अंधकारमय वज्र कपाट के पार देखना सीखो।

एक उच्च कोटि के मुसलमान फ़क़ीर, हज़रत मुइनुद्दीन चिश्ती ने कहा है :

चश्म बकुशाये किह् दीदारे-ख़ुदा जल्वा नमूद,
दीदे शौ यकसर ओ बर बन्द दरे-गुफ़्त ओ शनूद।

– दीवाने–ग़रीब नवाज़ (पृ.60)

अर्थात् तुम अपने अन्तर की आँख को खोलो, ताकि तुम प्रभु की शान को देख सको। अपने कानों तथा मुँह को बंद करके केवल एक आँख बन जाओ, ताकि उसके नूर को देख सको।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वास्तव में ये आँखें आत्मा की खिड़कियाँ हैं। सार बचन में स्वामी जी महाराज ने कहा है :

यह आँखें खिड़की हैं धुर घर की।

– सार बचन, पद्य (बचन yy, शब्द x)

गुरु नानक साहिब ने भी इसका संकेत किया है :

इक महल दो बारीआं शिव शक्ति सुलतान।
खिड़की खोल दीदार देण बहुत बड़ा इन मान।।

– जनम साखी, गुरु नानक, भाई बाला (मक्के दी गोष्ट)

संत कबीर भी ऐसा ही कहते हैं :

दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।

– कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1 (चितावनी, शब्द 22, पृ.66)

अर्थात् यदि तुम अपने दोनों नेत्रों को एक स्थान पर टिकाओ, तो तुम्हें अद्भुत नज़ारा दिखाई देगा।

दोनों आँखों का प्रकाश अपनी–अपनी नाड़ियों (optic nerves) में से निकल कर एक स्थान पर आ मिलता है, जिसे 'तीसरा–तिल',

'शिव–नेत्र' या 'नुक़्ताए–सवेदा' आदि नामों से पुकारा जाता है, जो एक ऐसी ज्योति से प्रकाशित है, जो स्वयंभू है तथा छाया रहित है। यहाँ से आत्मा 'सुखमना' (सुषुम्ना) या 'शाहरग' में प्रवेश करती है, जो 'इडा' और 'पिंगला' नामक नाड़ियों के बीच की नाड़ी है। यहाँ पर यह 'शब्द धुन' अर्थात् 'आकाशवाणी' को सुनती है, जो सारी सृष्टि का जीवन आधार है। यह प्रक्रिया आत्मा को ऊपरी मंडलों में ले जाने में और वहाँ उसकी सँभाल करने में सहायक होती है।

गुरुवाणी में भी कहा है :

सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ।।
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाइ।।

– आदि ग्रंथ (मलार वार म॰5, पृ॰1291)

कलि कीरति सबदु पछानु।।
एहा भगति चूकै अभिमानु।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰424)

जैसे–जैसे आत्मा स्थूल मंडल को छोड़ती जाती है, इसको तारा, सूर्य तथा चन्द्रमा के मंडलों से गुज़रना पड़ता है। फिर वहाँ सत्गुरु का नूरी स्वरूप आत्मा का स्वागत करता है और आत्मा को अपनी देख–रेख में साथ लेकर, 'शब्द' धारा के द्वारा उसे पिता के सच्चे घर ले जाता है। संतों का मार्ग किसी ख़ास धर्म या पंथ का मार्ग नहीं है। हिन्दू, मुसलमान या ईसाई, जो कोई भी सचखंड या सच्चे घर में प्रवेश करता है, वही संत कहलाता है। फ़क़ीर दो प्रकार के होते हैं :

1. निचले दर्जे के फ़क़ीरों को 'दर्जाए–सिफ़ली' कहते हैं। ये योगीजनों की तरह, पिंड या शरीर के चक्रों तक ही सीमित रहते हैं।

2. ऊँचे दर्जे के फ़क़ीरों को 'दर्जाए–उल्वी' कहते हैं। इनका आध्यात्मिक साधन आँखों के पीछे 'आज्ञा चक्र' से शुरू होता है।

कुछ मुसलमान फ़क़ीर ऊँचे दर्जे के थे। हज़रत इब्राहीम कहते हैं कि वे बड़े तारे को पार करके अपनी यात्रा में आगे बढ़े। गुरु नानक ने

भी अन्तर के तारे का वर्णन किया है, जिसे सत्गुरु अपनी दया–मेहर से किसी भी जिज्ञासु को दिखा सकते हैं। उन्होंने कहा है :

ਤਾਰਾ ਚੜਿਆ ਲੰਮਾ ਕਿਉ ਨਦਰਿ ਨਿਹਾਲਿਆ ਰਾਮ॥
ਸੇਵਕ ਪੂਰ ਕਰੰਮਾ ਸਤਿਗੁਰਿ ਸਬਦਿ ਦਿਖਾਲਿਆ ਰਾਮ॥

– आदि ग्रंथ (तुखारी म॰1, पृ॰1110)

पूर्व के ज्ञानी लोगों ने भी एक चमकीले तारे का पीछा किया, जिसने उन्हें आगे बैथलहेम पहुँचा कर, क्राइस्ट के दर्शन करवाए। तुलसी साहिब ने भी इस चमकीले तारे का वर्णन किया है, जो आत्मा को गगन अर्थात् सूक्ष्म मंडल के प्रवेश द्वार पर मिलता है। हज़रत मुहम्मद ने कहा है कि उन्होंने 'शक़–उल–कमर' अर्थात् चाँद के दो टुकड़े किए। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है और आलंकारिक भाषा में यह इशारा देता है कि वे अन्तर के चन्द्र मंडल को भेदकर, उससे परे गए। प्रत्येक व्यक्ति, जो आध्यात्मिक मंडलों की यात्रा करता है, उसे वास्तव में चाँद से गुज़.रते समय 'शक़–उल–क़मर' अर्थात् चाँद के दो टुकड़े करने पड़ते हैं।

मनुष्य महान है। सृष्टि की अन्य सभी वस्तुओं के समान, इसमें भी दैवी चेतनता की एक बूँद विद्यमान है। चाहे बाहर से देखने में यह मिट्टी का एक छोटा–सा पुतला नज़र आता है, लेकिन इसके अन्तर अवर्णनीय सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं। प्रभु ने मनुष्य को अपना ही रूप बनाया है। इसके मन की गहराइयों में अध्यात्म के अथाह ख़ज़ाने दबे पड़े हैं। जैसा कि क्राइस्ट ने कहा है कि यदि इसको अपनी सत्ता पर एक दाने के बराबर भी विश्वास आ जाए, तो प्रत्येक युग की महान आत्माओं के समान, यह बड़े–बड़े पहाड़ों को हिला सकता है और हवा तथा पानी पर हुक्म चला सकता है, जैसा प्रत्येक युग में महापुरुषों ने किया। हमारे सारे कार्यों को करने वाली शक्ति हमारी इच्छा–शक्ति है। यह संपूर्ण संसार ही प्रभु की इच्छा से बना है। परमात्मा ने हुक्म दिया कि "प्रकाश हो जाए," और प्रकाश हो गया। उसकी इच्छा से ही विभिन्न तत्त्वों में हरक़त हुई, जिनसे सृष्टि का निर्माण हुआ।

प्रभु का अंश होने के कारण आत्मा भी महान है और इसके अन्तर में भी अथाह सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं। दुर्भाग्यवश मन और बाहरी इंद्रियों से जुड़े रहने के कारण इसकी शक्ति बाहर बिखरी पड़ी है। सूर्य की किरणें किसी को जलाती नहीं, पर यदि इनको एक उत्तल ताल (convex lens) में से गुज़ारा जाए, तो ये सब एक केन्द्र पर एकत्र होकर दूसरी ओर की चीज़ों को आग लगा देती हैं। इसी प्रकार, मन के साथ लगने पर आत्मा शारीरिक इंद्रियों का रूप बन जाती है और कभी भी अपने आपको उनसे अलग नहीं मानती, हालाँकि यह स्वयं सारी सृष्टि की शासक है, उसका संचालन करने वाली है।

यही हमारे सारे विचारों, वचनों तथा कर्मों को चलाने वाली महान शक्ति है। इसी शक्ति से सितारे, चाँद और सूर्य जैसे आकाशीय खपिंड भी चलते रहते हैं। भौतिक या आध्यात्मिक, यांत्रिक या विद्युत, चुंबकीय या आणविक, सभी शक्तियाँ प्रभु की इस आदि शक्ति के ही आंशिक प्रकट रूप हैं। यह पलक झपकने भर में ही अनंत सृष्टियों को बनाती है, उनका विनाश करती है और फिर से बनाती है। लेकिन दुर्भाग्यवश हम इस अदृश्य शक्ति का अनुभव नहीं करते और संसार में खेले जा रहे कठपुतली के तमाशे के पीछे काम करने वाले अदृश्य हाथ को नहीं देखते। हम लगातार परछाईं की प्रक्रिया को समझने का प्रयत्न करते आ रहे हैं, लेकिन असली वस्तु जो गुप्त है (जिसकी कि परछाईं पड़ रही है), उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते। इस प्रकार आत्मा अपने स्रोत– प्रभु तथा अपनी दिव्यता (आलौकिक गुण) को पूरे तौर से भुला चुकी है। इसकी दिव्यता को पुनः जागृत करना होगा, ताकि यह वही अद्‌भुत कार्य व चमत्कार कर सके, जो महापुरुषों ने किए थे। इस सारी दुख भरी अवस्था का मूल कारण अज्ञान है। क्राइस्ट ने कहा है कि कई लोगों को यह भी नहीं पता कि,

जीवन शक्ति हाड़–माँस से कहीं ऊँची है और
शरीर वस्त्रों से कहीं ऊँचा है।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 6:25)

मनुष्य की शोभा इसी में है कि वह सांसारिक भोगों से अलग हटे, ताकि उसे दैवी उपहार का लाभ प्राप्त हो सके। ख़ूबसूरत यूसुफ़ की तरह, जो अपने भाइयों द्वारा कुएँ में गिरा दिया गया था, आत्मा भी शरीर रूपी कुएँ में, मन तथा इंद्रियों के साथ, एक असहाय अवस्था में गिरी पड़ी है। यदि हम अपने पिता– परमात्मा के द्वारा दी गई अद्‌भुत रस्सी (या सीढ़ी) रूपी 'शब्द' को पकड़ लें, तो हम इस शरीर रूपी कुएँ से निकल कर ऊपर आ सकते हैं। यह 'शब्द' की धारा है, जो हमें अथाह गहराई से ऊपर खींचकर परमात्मा के दैवी प्रकाश में लाती है और अनेकों आध्यात्मिक देशों को दिखाती है, जो हमें अभी नज़र नहीं आते।

चमड़े की आँखें केवल भौतिक पदार्थों को देख सकती हैं, पर ये दोनों ही नाशवान हैं तथा मृत्यु के वशीभूत हैं, लेकिन अगर हमारी अन्तर की आँख खुल जाए, तो हम अटल तथा अविनाशी मंडलों को देखने योग्य हो जाएँगे। शम्स तबरेज़ का कहना है :

अन्दर हैवां ब-निगर सर सूये ज़मीन दारद,
गर आदमी आख़िर सर जानबे-बाला कुन।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.278)

अर्थात् एक जानवर जिसका सिर सदैव नीचे रहता है, वह हर समय केवल खाने–पीने की सोचता है, लेकिन लानत है मनुष्य पर! यदि वह अपना सिर ऊँचा होने पर भी ऊपर आसमानों की ओर नहीं देखता।

जब तक मनुष्य इस इंद्रिय जगत से ऊपर नहीं उठता, वह ऊपरी मंडलों से अपरिचित रहता है, जो उसकी बेहतरी के लिए बनाए गए हैं। मौलाना रूमी ने कहा है :

चूँ ज़ हिस्स बेरूँ नयामद आदमी,
बाशद अज़ तस्वीरे-ग़ैबी आजमी।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.106)

अर्थात् जब तक आत्मा देह ध्यास से ऊपर नहीं उठती, यह आध्यात्मिक मंडलों से अपरिचित रहती है।

एक बार जब आत्मा भौतिक मंडल के पार जाना सीख जाती है, तो इसे जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में प्रभु का राज्य मिलता है,

क्योंकि प्रभु का साम्राज्य हमारे अन्तर में है। हाफ़िज़ शिराज़ी ने कहा है :

तू कज़ सराये तबीयत नमे रवी बेरूँ,
कुजा बकू-ए-हक़ीक़त गुज़र तवानी कर्द।

— दीवाने—हाफ़िज़ (पृ.122)

अर्थात् यदि तुम अपनी शरीर रूपी सराय से बाहर नहीं आते, तो किस प्रकार अपने प्रीतम के सच्चे घर में प्रवेश कर सकते हो?

आत्मा का इस प्रकार इंद्रियों से अलग होना, संतों के अनुसार 'जीते—जी मरना' कहलाता है। वेदों की भाषा में इसे 'आत्म—विश्लेषण' कहते हैं। क्राइस्ट इसे 'दूसरा जन्म' या 'नया जन्म' कहते हैं और मुसलमान इसे 'मौत से पहले मरना' कहते हैं। प्रभु में ऐसा मिलन ही वास्तव में पुनर्जीवन है। यह किसी संत—सत्गुरु द्वारा दिखाए गए मार्ग को स्वीकार करने से ही संभव है और यह मार्ग 'शब्द' धारा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सत्गुरु हमारे बीच में शब्द देहधारी बनकर निवास करता है, जैसे कि बाइबिल में क्राइस्ट ने कहा है :

'शब्द' मुजस्सम (देहधारी) हो गया और हमारे बीच में रहा।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:14)

सत्गुरु हमें अपनी तवज्जोह का दान देकर हमें थोड़ी देर के लिए शारीरिक चेतनता से ऊपर उठा देते हैं और हमें 'ज्योति' तथा 'शब्द धुन'— दोनों का प्रत्यक्ष अनुभव देते हैं, जिसका दिनों—दिन अभ्यास करके, हम जहाँ तक चाहें, विकास कर सकते हैं। यह ('ज्योति' और 'शब्द धुन') धीरे—धीरे आत्मा को भौतिक से सूक्ष्म मंडल तथा सूक्ष्म से कारण मंडल में ले जाते हुए निजधाम, सचखंड— पिता के सच्चे घर में पहुँचा देती हैं।

जब आत्मा अपनी यात्रा के आख़िर में अर्थात् पिता के सच्चे घर पहुँचती है और प्रभु की शान को देखती है, जो अवर्णनीय तथा अद्‌भुत

है, तब व्यक्ति सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में प्रभु को देखने लगता है। जब क्राइस्ट तथा भगवान बुद्ध शारीरिक चेतनता से ऊपर उठे, तो उन्होंने परमात्मा तक जाने वाले रास्ते को क्रमशः 'प्रभु के साम्राज्य' या 'निर्वाण पद' को जाने वाला रास्ता कहा है। मुसलमान इसे 'मुक़ामे–हक़' और ईसाई इसे 'नया जेरूसलम' कहते हैं। इसके बाद क्राइस्ट कहने लगे, "परमात्मा को देखो।" गुरु नानक ने कहा :

नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰397)

दक्षिणेश्वर के संत, श्री रामकृष्ण परमहंस से, नरेन (जो बाद में स्वामी विवेकानन्द बने) ने जब यह पूछा कि क्या उन्होंने परमात्मा को देखा है, तो उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ मेरे बच्चे, मैंने देखा है और उसे इतनी सफ़ाई से देख रहा हूँ, जितनी सफ़ाई से तुम्हें देख रहा हूँ, बल्कि इससे भी ज़्यादा सफ़ाई के साथ।"

अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु
सो देखिआ गुरुमुखि आखी।।

– आदि ग्रंथ (सिरीराग की वार म॰4, पृ॰87)

फिर कहा :

नानक का प्रभु पूरि रहिओ है जत कत तत गोसाई।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰758)

परमात्मा सबसे महान है। वह पूर्ण, निराकार, अवर्णनीय और बेजोड़ है। वह न ज्योति है, न आवाज़। वह अपने आप में क्या है— कहना पड़ेगा कि वह सिर्फ़ वही है। पर चूँकि आम बोलचाल की भाषा में उसका बोध कराना पड़ता है, इसलिए उसके अनंत और असीमित होने पर भी हमें अपनी सीमित बुद्धि से प्रभु का परिचय देने के लिए सीमित शब्दों का ही सहारा लेना पड़ता है। गुरुवाणी में आता है :

हरि बेअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसो रे।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰612)

जब निराकार प्रभु (God Absolute) प्रकट हुआ, तो उस समय एक हिलोर हुई, जिसने दो चीज़ों को जन्म दिया– 'ज्योति' तथा 'शब्द', और इन्हें सभी संतों ने ज्योति तथा उद्‌गीत के नाम से पुकारा है। निराकार रूप में परमात्मा देखा और सुना नहीं जा सकता, और न ही अभी तक किसी ने परमात्मा को उस रूप में देखा है, परन्तु इज़हार में आई प्रभु सत्ता को 'ज्योति' और 'नाद' के रूप में देखा और सुना जा सकता है। यह अनुभव केवल आत्मा द्वारा किया जा सकता है। जब आत्मा देहाभास से ऊपर उठती है, तब वह अन्तर की दृष्टि तथा अन्तर के कानों से यह अनुभव प्राप्त करती है। संत–जन निराकार प्रभु को 'महा–दयाल' और प्रकट हुए प्रभु को 'दयाल' कह कर पुकारते हैं। अनेकों सृष्टियाँ, आध्यात्मिक मंडल और सभी खंड, शब्द धारा से उत्पन्न हुए हैं। जब यह शब्द–धारा ऊपर से नीचे की ओर आती है, पहले विशुद्ध चेतन, फिर चेतन–जड़, फिर जड़–चेतन और अंत में जड़ मंडल का निर्माण करती है। इन में से पिछले तीन प्रलय या महाप्रलय के समय नाश हो जाते हैं। प्रत्येक मंडल का मालिक अलग–अलग है : जैसे कि सूक्ष्म मंडल या अंड का मालिक है, 'ज्योति–निरंजन' और इसने यह भौतिक या पिंड का मंडल बनाया है। यह सूक्ष्म खंड परमार्थ की सीढ़ी पर नीचे से द्वितीय स्थान पर है। कारण या ब्रह्म जगत का स्वामी 'ओंकार' है। यही इससे निचले मंडल, अंड या सूक्ष्म जगत को बनाता है। ऐसे ही, अलग–अलग शक्तियाँ अलग–अलग मंडलों को संभालने वाली हैं। सभी शक्तियाँ सत्पुरुष, सतनाम, एकंकार या दयाल से– जो इस क्रम में सर्वोच्च है– अपनी सत्ता प्राप्त करती हैं।

आत्मा जब शरीर से ऊपर उठती है, तो यह क्रमशः एक–एक मंडल में से जाती हुई– अंत में सतनाम या मुक़ामे–हक़ में प्रवेश कर जाती है। इस सारे विवरण से स्पष्ट है कि इस समय तक आत्मा की सत्ता सतनाम से भिन्न है। सबको चलाने वाली शक्ति को ख़सम, स्वामी, हरिराय, महादयाल व निराला आदि शब्दों से पुक. ारते हैं, जो अपने आप में अद्‌भुत व अवर्णनीय है और आत्मा इस महासत्ता में ठीक उसी प्रकार लीन हो जाती है, जिस प्रकार पानी की

एक बूंद समुद्र में अथवा ज्योति की एक किरण सूर्य में मिल जाती है।

गुरुवाणी में आता है :

> जिउ जल महि जलु आइ खटाना।।
> तिउ जोती संगि जोती समाना।।
>
> – आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰278)

फिर कहा है :

> सूरज किरणि मिले जल का जलु हूआ राम।।
> जोती जोति रली संपूरनु थीआ राम।।
>
> – आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰846)

इस अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। मुसलमान फ़क़ीरों ने इस लीन होने की अवस्था को 'हैरत–हैरत', हिन्दुओं ने 'आश्चर्य–आश्चर्य' और सिक्खों ने 'वाहो–वाहो' पुकारा है, जो सभी आश्चर्य के उद्गार हैं। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के अधिकतर फ़क़ीरों का वर्णन ब्रह्म की अवस्था तक है। उनमें से किसी विरले ने ही पार–ब्रह्म के विषय में कुछ बतलाया है। संतों का मार्ग पार–ब्रह्म से भी परे का है, जो प्रलय तथा महाप्रलय, दोनों के नष्ट हो जाने से अतीत है।

11.
आदर्श धर्म का अनुभव : एक अंतरीय उपलब्धि

यदि हम आत्मा के परमात्मा में लीन होने का अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें मानव शरीर रूपी प्रयोगशाला में उसी प्रकार प्रवेश करना होगा, जैसे कि एक विज्ञान का विद्यार्थी कोई वैज्ञानिक प्रयोग करने के लिए वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रवेश करता है। वह प्रयोगशाला के सारे खिड़की–दरवाज़े बंद कर लेता है, जिससे बाहर का शोर, हवा तथा चहल–पहल उसके कार्य में बाधा न उत्पन्न करें। फिर, प्रयोग करने के लिए उसके सम्मुख मेज़ पर अनेक वस्तुएँ तथा यंत्र आदि रख दिए जाते हैं। अब वह विद्यार्थी एक विज्ञान के शिक्षक की देख–रेख में अपना विज्ञान का प्रयोग प्रारम्भ करता है। मस्तिष्क में ध्येय की एकाग्रता, मन की पैनी दृष्टि तथा हृदय की संलग्नता से वह कार्य प्रारम्भ करता है। यद्यपि वह एक दो बार असफल भी हो जाता है, परन्तु वह निराश न होते हुए, साहसपूर्वक अपने प्रयास करता जाता है। जब तक वह सफलता प्राप्त नहीं कर लेता, वह बार–बार प्रयोग करता जाता है। ठीक इसी प्रकार, आध्यात्मिक अनुभव के लिए मानव शरीर रूपी प्रयोगशाला में प्रवेश करके उसकी समस्त खिड़कियों अर्थात् भौतिक इंद्रियों को बंद करना होगा, जिससे संसार का शोर–शराबा तथा आकर्षण इस कार्य में बाधक न बने।

अन्तर जाने की इस प्रक्रिया का तात्पर्य है, सुरत की धाराओं को एकाग्र करके उन्हें दोनों भवों के पीछे केन्द्रित करना, जहाँ पर आत्मा का असली ठिकाना है। इसका अर्थ है कि सुरत या आत्मा को, जो इस समय पूरे शरीर में, चोटी से एड़ी तक फैलकर जगत का रूप बनी बैठी है, एकत्रित करके एक स्थान पर केंद्रित करना, ताकि व्यक्ति शरीर की सुध–बुध भी खो बैठे। ध्यान बाहर जाने के सारे रास्ते बंद करने

के पश्चात् किसी महापुरुष की उपस्थिति में, उन की देख–रेख तथा आदेशानुसार आध्यात्मिक प्रयोगों को प्रारम्भ किया जाता है। इस सारी प्रक्रिया को पूरी एकाग्रता और प्यार भरी भक्ति के साथ करना होता है।

तब आप शरीर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा रह जाते हैं। सत्गुरु का ज्योतिर्मय स्वरूप भी ऐसा ही विशुद्ध है : वह शब्द–देहधारी है, उसे 'नाम', 'श्रुति', 'नाद', 'गुप्त–संगीत' आदि किसी नाम से पुकार सकते हैं। आत्मा का 'शब्द' के साथ मेल तभी संभव है, जब मन में कोई तरंगें न उठें और बुद्धि पूर्णतया स्थिर हो, ताकि भीतर और बाहर गहन शांति छा जाए। बाहर की सफ़ाई से पूर्व अन्तर की सफ़ाई करना अत्यन्त अनिवार्य है। आत्मिक–प्रयोगों से पहले मन को सभी इच्छाओं, क्रोध, लोभ, मोह, आसक्ति, अहंकार आदि से साफ़ करके पवित्र करना होगा। गुरुवाणी में आता है :

बाहरु धोइ अंतरु मनु मैला दुइ ठउर अपुने खोए।।
ईहा कामि क्रोधि मोहि विआपिआ आगै मुसि मुसि रोए।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰381)

हज़रत मुहम्मद साहिब ने भी मन की पवित्रता पर बड़ा ज़ोर दिया है। उनका कहना था कि जन्नत की कुन्जी नमाज़ है और नमाज़ की कुन्जी पाकीज़ग़ी अर्थात् पवित्रता है, और कहा कि पाकीज़गी निस्फ़ (आधा) ईमान है।

बाइबिल में सेंट मैथ्यू ने कहा है :

वे लोग धन्य हैं, जिनके हृदय पवित्र हैं क्योंकि केवल वे ही प्रभु के दर्शन करेंगे।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:8)

यह सब कहने का तात्पर्य है कि अन्तर की स्वच्छता केवल शरीर धो लेने से नहीं आती। शरीर की मैल को पानी से धोया जा सकता है। प्रदूषण की गंदगी साबुन से धोई जा सकती है, परन्तु पापों से भरा मन 'नाम' अर्थात् 'शब्द' के साथ लगने से ही साफ़ हो सकता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं :

भरीऐ हथु पैरु तनु देह।। पाणी धोतै उतरसु खेह।।
मूत पलीती कपड़ु होइ।। दे साबूणु लईए ओहु धोइ।।
भरीऐ मति पापा कै संगि।। ओहु धोपै नावै के रंगि।।

– आदि ग्रंथ (जपु जी पौ॰20)

हम अपनी सुरत को अन्तर में 'शब्द' की धारा के साथ जोड़कर 'नाम' या 'शब्द' का अभ्यास कर सकते हैं, पर ऐसा करने के लिए मन तथा इंद्रियों का दमन अनिवार्य है। गुरुवाणी में भी आया है :

दस इंद्री करि राखै वासि।। ता के आतमै होइ परगासु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰236)

केवल आत्मा ने ही इस अनुभव को पाना है और यदि वह स्वयं (आत्मा) इंद्रियों के भोगों–विलासों के तूफ़ानी समुद्र में डूबी हो, तो वह इस अनुभव को प्राप्त करने में असमर्थ रहेगी। ऐसे में इसकी हालत उस नाव जैसी होगी, जिसमें अनेक सुराख़ हों और चलाने के लिए कोई चप्पू भी न हो और जो असहाय होकर तूफ़ान और लहरों के थपेड़ों से समुद्र में भटकती फिरती हो।

जब तक किसी को आत्मा तथा परमात्मा का साक्षात् अनुभव नहीं मिलता, तब तक प्रभु के अस्तित्व पर अटूट विश्वास उत्पन्न नहीं होता। संतों तथा सत्गुरुओं ने चारों शरीरों– अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण– की सीमाओं को पार करके अन्तर में उस 'सत्' को स्वयं पाया है। इसलिए वे जिज्ञासुओं को प्रभु–प्राप्ति के राज–मार्ग पर चलाने में पूर्ण समर्थ हैं, क्योंकि वे अपने निज अनुभव के आधार पर बोलते हैं, न कि सुनी–सुनाई या किताबी ज्ञान के आधार पर, जो कि धर्मग्रंथों या पंडित–मुल्लाओं से सीखा हुआ होता है। गुरुवाणी में आया है :

संतन की सुणि साची साखी।। सो बोलहि जो पेखहि आखी।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰854)

पुनः, यह प्रभु–रूप महापुरुष किसी को भी अपनी शिक्षाओं पर अंधविश्वास करने के लिए नहीं कहते। बल्कि, वे तो कहते हैं कि किसी संत–सत्गुरु के शब्दों पर भी तब तक विश्वास न करो, जब तक जो वह

कहता है, उसका तुम स्वयं अनुभव नहीं कर लो।

जब लग न देखूँ अपनी नैणी।
तब लग न पतीजूँ गुरु की बैणी।।

— स्वामी शिवदयाल सिंह जी

जब देखैं हम अपने नैना।
तब मानैं सतगुरु के बैना।।

— तुलसी साहिब, घट रामायण, भाग 1 (पृ.103)

संत–जन आत्मा की प्रत्यक्ष गवाही पर विश्वास करते हैं। वे ऋषि अष्टावक्र के समान, अन्तर की विद्या को कहीं पर भी, उसी क्षण बाँटने की योग्यता रखते हैं। संत–जन व्यर्थ के आश्वासन नहीं देते, जो कि भविष्य में घटें या न घटें, न ही वे झूठी आशाएँ देते हैं, जो पूरी हों या न हों। उनका धन तो सर्राफ़ की दुकान में रखे असली सोने के समान है, जिसको जब चाहे, कोई नक़द ले सकता है, न कि उधार का सौदा। मनुष्य भविष्य के गर्भ में छिपे तथा मरने के बाद मिलने वाले अनिश्चित लाभ के लिए कर्मकांड तथा शुभकर्म क्यों करे? मानव जीवन बड़ा अनमोल तथा अल्प है। उसे उन कामों में व्यय करना उचित नहीं, जिनका आगे चलकर कोई लाभ ही न मिले।

12.

सही निशाना

प्रत्येक व्यक्ति कष्टों और दुखों से छुटकारा पाने के लिए और चिरस्थायी आनंद पाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है, परन्तु उसे मिलता कुछ नहीं। बुद्धिमान व्यक्ति वही है, जो सही दिशा की ओर सदा जुटा रहता है और अपने निशाने या लक्ष्य को कभी नहीं भूलता। बिना निश्चित लक्ष्य के, व्यक्ति, अंत तक अंधकार में भटकता रहता है। दूसरी ओर, एक साफ़–स्पष्ट लक्ष्य, प्रकाश स्तम्भ के समान पग–पग पर पथ–प्रदर्शन करता है, और ऐसा प्रत्येक पग थके हुए पथिक को उसके लक्ष्य के निकट पहुँचाता जाता है।

उचित प्रकार से सोचे बिना और अपनी एच्छित वस्तु पर ध्यान केंद्रित किए बिना, केवल हाथ पैर हिलाने से कुछ हासिल नहीं होता। लक्ष्य और प्रयत्न– दोनों में तालमेल होना चाहिए, तभी सफलता की आशा हो सकती है। लक्ष्य की ओर पीठ करके, जीवन भर भी परिश्रम किया जाए, तो भी कुछ नहीं मिलेगा। जैसे कि कबीर साहिब ने फ़रमाया है :

वस्तु कहीं ढूँढे कहीं, केहि बिधि आवे हाथ ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (गुरुदेव का अंग 59-60, पृ.5)

इस प्रकार का परिश्रम वास्तव में कोल्हू में जुते बैल के समान है, जो आँखों पर पट्टी बाँध कर सारा दिन निरंतर घूमता रहता है। इतने विषम चक्कर खाने पर भी उसे कुछ नहीं मिलता और न ही वह किसी प्रकार की प्रगति कर पाता है।

इस संसार में जहाँ कहीं भी देखा जाए, लड़ाई–झगड़ों व अशांति के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखता। एक जीव दूसरे को खा रहा है।

किस प्रकार अस्तित्व बना रहे, इस हेतु अनंत संघर्ष चल रहा है। यह विश्व व्यापी भ्रम वास्तव में अपने लक्ष्य का सही ज्ञान न होने के कारण है। मनुष्य जीवन, किसी अन्य जीवन के समान, अपनी एक अमूल्य इष्ट रखता है, जिसका अध्ययन केवल जीवन रूपी पुस्तक से हो सकता है। सारे पवित्र ग्रंथ और सारा सांसारिक ज्ञान क्या है? केवल मानव शरीर में बैठी आत्मा के बुद्धि के स्तर पर प्रकट होने का परिणाम। सभी प्रेरणा अन्तर में स्थित आत्मा से उत्पन्न होती है और यही सारे ज्ञान तथा विवेक का स्रोत है। वह (शरीर रूपी) मकान, जिसमें हम रहते हैं, सचमुच आश्चर्यजनक है। प्राचीन काल के समान, परमात्मा आज भी मानव आत्मा को अपना साक्षात्कार कराता है, यदि वह साफ़–स्वच्छ, पाक तथा पात्र हो। यह शरीर हरि का सच्चा मंदिर है, जिसमें मानव की आत्मा तथा परमात्मा– दोनों एक साथ निवास करते हैं। यदि ऐसा न हो, तो यह शरीर, शव के समान, जलाने अथवा दफ़नाने योग्य हो जाता है।

एक प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर, शम्स तबरेज़ ने कहा है :

> तन रा चू मुश्ते काहदाँ, दर ज़ेरे-ऊ दरियाए जाँ,
> गरचिह् ज.बेरूँ ज़र्रा-ए-सद आफ़ताबे अज़ दरूँ।
>
> – दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.259)

अर्थात् मानव शरीर रूपी तिनके के साथ जीवन की अनंत धारा बह रही है। इस हृदय के कण–कण में सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश छिपा पड़ा है।

पर अफ़सोस! कि बिना सत्गुरु की सहायता के, इंसान जीवन के रहस्य को नहीं जान सकता। सारा ब्रह्मांड इसी मानव रूपी पिंड में छिपा पड़ा है। आत्मा के मूल में छिपे हुए अध्यात्म के अथाह भंडार को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अन्तर में बहुत खोज करनी पड़ती है। जो परमात्मा बाहर खोजता–फिरता है, वह विधर्मी और संशयी है, और असलियत को नहीं जानता। गुरुवाणी में भी आया है :

> **सभ किछु घर महि बाहरि नाही।।**
> **बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही।।**
>
> – आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰102)

13.
संतों का मार्ग :
एकमात्र सच्चा धर्म

एकमात्र सच्चा धर्म, परा–विद्या या परे का ज्ञान है। एक व्यक्ति संकुचित दृष्टिवाला हो सकता है या फिर दूर–दृष्टि वाला। कोई व्यक्ति केवल अपनी नाक के नीचे ही देख सकता है, जब कि दूसरा बहुत दूर, आकाश के परे भी देखने की दृष्टि रखता है। इन दोनों में ज़मीन–आसमान का अन्तर है। इसलिए हमें ऐसे व्यक्ति की खोज करनी चाहिए, जो प्रभु से एकमेक हो चुका है तथा परमात्मा की चेतन सहकर्मी बन चुका है। तभी हमें परमात्मा के रास्तों का परिचय मिल सकता है और हम वास्तव में परमात्मा का अनुभव पा सकते हैं।

परमात्मा का ज्ञान आत्मा का अंतरीय विज्ञान है। अतः इसे 'परा–विद्या' कहा जाता है, जो कि परे का ज्ञान है तथा 'अपरा–विद्या' के विपरीत है, जो कि इंद्रियों के घाट का अनुभव या ज्ञान है। असीमित विस्तार तथा अकथनीय संभावनाओं वाला वैज्ञानिक ज्ञान आख़िरकार मात्र स्थूल भौतिक जगत का ही ज्ञान है, जो वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता। इसके द्वारा हमें भौतिक सृष्टि का ज्ञान होता है और यह बुद्धि का भोजन है, जबकि परा–विद्या सृष्टि के गर्भ में छिपे हुए सृष्टा या 'सत्' से संबंधित है और यह आत्मा या चेतन का भोजन है। अपरा–विद्या इंद्रियजनित ज्ञान से संबंधित विषयों तक सीमित है तथा इसका लक्ष्य इस ज्ञान को मानव जाति की सेवा हेतु प्रयुक्त करना है। परा–विद्या उस चेतन जीवन–धारा से संबंधित है, जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है और जिसके द्वारा हम सभी दूसरे जीवों में जीवन के अंश को महसूस करते हैं। संसार के विषय में अथाह ज्ञान होने पर भी व्यक्ति अपने अन्तर के उस आधारभूत ज्ञान से पूर्णतया अपरिचित रह सकता है, जो कि उसके

जीवन का जीवन और आत्मा की आत्मा है। इस प्रकार आत्म–ज्ञान ही जीवन की सारी समस्याओं को सुलझाने वाली कुंजी है। अपने आप को जान लेने के अभाव में समस्त सांसारिक ज्ञान व्यर्थ है। शिक्षा और जानकारी से बुद्धि तीव्र होती है और इन दोनों से इंसान का कार्यक्षेत्र और अधिकाधिक व्यापक होता जाता है, जब तक यह समस्त सृष्टि को घेर नहीं लेता (यदि ऐसा सम्भव हो सके), परन्तु जैसे–जैसे व्यक्ति बाहर उन्नति करता जाता है, उतना ही अधिक वह जीवन के वास्तविक लक्ष्य से दूर होता जाता है– चेतन जीवन के लक्ष्य से दूर होता जाता है। बू–अली क़लन्दर साहिब ने कहा है :

आंचिह् मीदानी हमा नादानी अस्त,
व आंचिह् मी बीनी हमा हैरानी अस्त।

अर्थात् जो कुछ हम देखते हैं, वह दृष्टि भ्रम है, मूर्खता है, मृगतृष्णा है, जिसका कोई अस्तित्व नहीं। जितना हम जानते हैं, वह केवल अज्ञान है।

स्वामी जी महाराज ने यही कहा :

रूबरू आमिलाने बातन फ़हम।
आलिमाँ इल्मे-ज़ाहरी जाहिल।

– सार बचन (बचन 21, ग़ज़ल 3)

अर्थात् केवल एक अनुभवी व्यक्ति अन्तर के ज्ञान में निपुण होता है, जबकि एक आलिम (पढ़ा–लिखा) व्यक्ति बेवकूफ़ है।

विज्ञान स्थूल वस्तुओं और उनके पारस्परिक संबंध का वर्णन तो कर सकता है, परन्तु इनके पीछे कार्य करने वाली संचालन शक्ति से बिल्कुल अनभिज्ञ है। जीवन का लक्ष्य थोथा पुस्तकीय ज्ञान नहीं, वरन् संपूर्ण संसार को चलाने वाली जीवन शक्ति को जानना है, जो हर जगह काम कर रही है और जिसको हम 'शब्द', 'नाम' व 'कलमा' आदि नामों से जानते हैं। संत–जनों के अनुसार वास्तविक ज्ञान केवल पुस्तकों व धर्मग्रंथों का अध्ययन करने में नहीं, बल्कि 'शब्द' धारा व 'नाद' के साथ संपर्क स्थापित करके ज्योतिर्मयता व पूर्णता पाने में है।

संतों की यह विद्या, जो कि शुद्ध आंतरिक विद्या है, सनातन से सनातन होते हुए भी चिर–नवीन है। यह ज्ञान जिसे परा–विद्या कहते हैं, स्वयंभू है, किसी अन्य ज्ञान पर आधारित नहीं। यह विद्या पुरातन से पुरातन है, अत्यंत ही सहज और परिपूर्ण है और इसकी प्राप्ति पुस्तकों से नहीं होती। निस्संदेह, धर्मग्रंथों में इस आध्यात्मिक विद्या को कुछ सीमा तक समझाने का प्रयत्न किया गया है, यद्यपि इस प्रकार के सभी प्रयत्न निष्फल रहे हैं, क्योंकि वास्तविकता असीमित है इसीलिए निर्जीव पृष्ठों में इसे न तो सीमित किया जा सकता है और न ही बाहर कोई ऐसा नमूना है, जिसके साथ इसकी तुलना की जा सके। लेखकों के सीमित शब्दों व अल्पबुद्धि द्वारा उस प्रभु का पूरा वर्णन करने की सामर्थ्य भी नहीं है।

संत–पुरुषों ने तर्कों और दार्शनिक विवादों से सदैव बचने का स्पष्ट आदेश दिया है, क्योंकि 'सत्' इंद्रियों, मन तथा बुद्धि की सीमा से बहुत परे है। मात्र बौद्धिक कार्यों में लगे रहने से जीवन में परिवर्तन नहीं आता। इसीलिए संत–जन बड़े स्पष्ट शब्दों में आदेश देते हैं :

उपदेश पर अमल करने वाले बनो, केवल सुनने–सुनाने में न रह जाओ।

— पवित्र बाइबिल (जेम्स 1:22)

उनकी शिक्षा नगद है, न कि उधार का सौदा। यह एक व्यावहारिक शिक्षा है, मात्र सैद्धान्तिक तर्क–वितर्क नहीं। हम पहले सिद्धांत (theory) को समझें, फिर अपने तर्क–वितर्क और बुद्धि को किनारे कर दें और अभ्यास में लग कर देखें कि हमें क्या मिला है। कबीर साहिब ने कहा है :

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करो, तो कुछ पावो सार।।

— सार बचन (बचन 24, शब्द 1)

मुण्डकोपनिषद् में वृत्तान्त आता है कि एक बार शौनक नामक व्यक्ति भारद्वाज ऋषि के पास गए और उनसे प्रश्न किया, "महाराज, मुझे उस ज्ञान को बताओ, जिसके जानने से सर्वज्ञ या सर्वज्ञान सम्पन्न हुआ जाता है।" ऋषि ने उत्तर दिया : "ऐ शौनक, ब्रह्म के जानने वाले बताते

हैं कि संसार में दो प्रकार के ज्ञान हैं : परा–विद्या और अपरा–विद्या। 'अपरा–विद्या' का ज्ञान वेदों, अन्य धर्मग्रंथों तथा ज्योतिष व व्याकरण आदि भौतिक विज्ञानों का अध्ययन करने में है, परन्तु इससे ब्रह्म के दर्शन नहीं होते। दूसरा ज्ञान 'परा–विद्या' अर्थात परे का ज्ञान है, जिसके द्वारा ब्रह्म अर्थात् अपरिवर्तनशील 'अक्षर' की प्राप्ति होती है। यह अनुभव का विषय है, जो आत्म–ज्ञान तथा प्रभु–ज्ञान से संबंधित है, और ये दोनों ज्ञान मन, बुद्धि तथा इंद्रियों की सीमाओं से परे हैं। परा–विद्या का ज्ञान विशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त हो सकता है, और यह भी इस ज्ञान को तभी प्राप्त करने योग्य होती है, जब यह ध्यान की प्रक्रिया द्वारा अपने ऊपर चढ़े आवरणों को उतारती हुई स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण– चारों शरीरों से पार हो जाती है। इस प्रकार, अपरा–विद्या संसार का पुस्तकीय ज्ञान है, जबकि परा–विद्या आत्मा का सांसारिक पदार्थों, नातों–रिश्तों से संबंध विच्छेद कर अंतर्मुख होने का विज्ञान है और यही वास्तविक ज्ञान का मूल है।"

14.
अपरा-विद्या :
सांसारिक ज्ञान और उसका महत्त्व

धर्मग्रंथ वास्तव में इसलिए सम्मान व पूजा के योग्य हैं, क्योंकि इनमें उन बेशक़ीमती अनुभवों का वर्णन है, जो महापुरुषों ने सत्य की खोज के दौरान पाए। धर्मग्रंथों के स्वाध्याय का भी अपना एक महत्त्व है। ये पुस्तकें कुछ हद तक हममें प्रभु–ज्ञान की अभिलाषा जागृत करती हैं। इनका अध्ययन करने से हम भी जीवन के विज्ञान की खोज करने को उत्सुक होते हैं। इनसे हममें ऐसे जीवित समर्थ सत्गुरु की खोज करने की अभिलाषा होती है, जो हमें दीक्षा देकर इस विज्ञान का प्राथमिक अनुभव दे दे, क्योंकि ऐसा महापुरुष ही हमें अपनी देख–रेख में एक के बाद दूसरे आध्यात्मिक मंडलों में ले जा सकता है। पर इससे आगे, धर्मग्रंथ हमारी सहायता नहीं कर सकते।

सच्ची सहायता केवल जीवित सत्गुरु से प्राप्त होती है, जो हमें पुरातन प्रयोग ताज़े करवा देता है। हमारी तसल्ली के लिए वह प्राचीन प्रमाणों और अनुभवों को भी प्रस्तुत करता है, जिससे हम अपने अनुभवों का भी मिलान कर सकें। धर्मग्रंथों की सही व्याख्या भी किसी संत–सत्गुरु के द्वारा ही की जा सकती है और वे हमें उसका सही दृष्टिकोण पेश करते हैं। उनकी आत्मा 'सत्' के भंडार से जुड़ी होने के कारण, उनकी वाणी प्रभु की ही वाणी होती है, भले ही वह बाह्य रूप से एक मानव के मुख से निकलती प्रतीत होती है :

गुफ़्ताए-ऊ गुफ़्ताए-अल्लाह बुवद,
गरचिह् अज़ हल्क़ूमे-अब्दुला बुवद।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.213)

अर्थात् उसका कहा हुआ प्रभु का कहा हुआ होता है, भले ही देखने में वह आवाज़ एक इंसान के गले से निकलती मालूम पड़ती है।

गुरु नानक ने भी ऐसा ही कहा है :

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।।
– आदि ग्रंथ (तिलंग म॰1, पृ॰722)

एक महापुरुष के मुख से निकले वचन, जो कि दिव्य ज्ञान से भरपूर होते हैं, वे धर्मग्रंथों में लिखी गई बेशक़ीमत वाणी से अधिक मूल्यवान हैं। धर्मग्रंथों की वाणियों का लाभ सिर्फ़ इतना है कि ये हममें भी प्रभु–प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न कर सकती हैं, पर ये हमें अंतर्मुख करने में तथा बाहर से ध्यान खींच कर 'शब्द', 'नाम', 'कलमा' के साथ सम्पर्क करवाने में कोई मदद नहीं दे सकतीं। पर दुख का विषय है कि संसारी लोग पुस्तकों के अध्ययन में उलझे पड़े हैं और इन्हीं को जीवन का उद्देश्य मान लेते हैं, लेकिन इन पुस्तकों के अनुसार चलने का प्रयत्न नहीं करते। ये पुस्तकें कहती हैं, "प्रभु के साथ जुड़ जाओ।" पर प्रभु से जुड़े बिना हम संसार में उलझते जाते हैं, धर्मपुस्तकों से चिपके रह जाते हैं और परमानंद का अनुभव नहीं पाते।

तब ते जीव भयउ संसारी।। छूटे न ग्रंथ न होई सुखारी ।।
श्रुति पुरान बहु कहिउ उपाई।। छूटे न अधिक अधिक उरझाई ।।
– रामचरितमानस (उत्तर–कांड)

दूसरी ओर, एक जीवित सत्गुरु हमें 'बाहर निकलने' का भेद बतला कर हमें अनंत की ओर ले जाने वाले "सीधे महान मार्ग" पर अग्रसर करता है। इस प्रकार वह संसार में जीवन के संघर्षों से पीड़ित तथा थकी हुई जीव–आत्मा का पथ–प्रदर्शक बनता है। इस कार्य को कोई पुस्तक कर सकने में समर्थ नहीं है।

सृष्टि के सचेतन जीवों में मनुष्य सबसे पुराना है। समस्त धर्म और धर्म पुस्तकों की रचना उसके अवतरण के पश्चात् ही हुई। सभी धर्म मनुष्य को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से बनाये गए हैं, पर मनुष्य किसी एक धर्म के लिए नहीं बनाया गया। परमात्मा ने मनुष्य बनाये और मनुष्य

ने सारे धर्म बनाये। मनुष्य सारे धर्मग्रंथों का रचयिता है, परन्तु जीवन के जिस महान रहस्य का इनमें वर्णन है, वह सदैव मानव हृदय में छिपा ही रह जाता है। कोई भी न तो इन रहस्यों को जान सकता है और न ही इन्हें बिना गुरु की मदद के सुलझा सकता है! सत्गुरु अन्तर जाने का भेद बताता है और बाहर से हटकर, स्थूल, सूक्ष्म और कारण, सभी आवरणों को पार करने में आत्मा की मदद करता है, ताकि यह अन्तर में झाँक सके तथा अन्तर के दिव्य नाद को सुन सके।

मनुष्य सदैव पवित्र धर्मग्रंथों का पाठ करता रहा है और बड़े–बड़े जनसमूह में उनकी व्याख्या करता रहा है। परन्तु दुख इस बात का है कि वह स्वयं उस वास्तविकता से कोसों दूर रहता है, जिसका वह स्वयं भी अध्ययन करता रहता है तथा ज़ोर–शोर से लोगों को सुनाता भी रहता है।

> सिम्रति सासत्र पड़हि पुराणा।। वादु वखाणहि ततु न जाणा।।
> विणु गुर पूरे ततु न पाईऐ सच सूचे सचु राहा हे।।
>
> – आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1032)

मनुष्य और धर्मग्रंथों में महान अन्तर है। मनुष्य चेतन है तथा बुद्धि और विवेक रखता है और उसे अपने चेतन होने का ज्ञान भी है, जब कि धर्मग्रंथ निर्जीव तथा जड़ हैं और बिना सही टीकाकार के, वे सही ज्ञान देने में असमर्थ हैं। ये निर्जीव धर्म पुस्तकें भला किसी जीवित प्राणी से किसी प्रकार बोलेंगी, कैसे उससे तर्क करेंगी और उसे भली प्रकार से कैसे संतुष्ट करेंगी? पुस्तकीय ज्ञान को ग्रहण करने के पश्चात मानव को लगता है कि वह वास्तविकता को जानता है, लेकिन वह यह नहीं समझता कि अनंत को सीमित साधनों द्वारा नहीं जाना जा सकता है। सिर्फ़ आत्मा ही इस सत्य का अनुभव कर सकती है, यदि वह किसी जीवित सत्गुरु के आदेश अनुसार, उसकी देख–रेख में ऊपरी मंडलों में चढ़ाई करना सीख जाए।

जब तक हमें अन्तर में आत्मा का अनुभव प्राप्त नहीं होता, हम घोर अंधकार में रहते हैं। पुस्तकीय ज्ञान एक सिर–दर्द बन जाता है,

क्योंकि यह मन को इंद्रियों के द्वारा बाहर दुनिया में फैलाए रखता है तथा हमें संसार और उसके पदार्थों से जोड़े रखता है। फलस्वरूप हम केवल शरीर व शारीरिक संबंधों के विषय में ही सोचते रहते हैं। इसके विपरीत, 'आत्म ज्ञान' आत्मा की भूख मिटाकर उसे शांति व सुख प्रदान करता है। इसके लिए हमारी एक मात्र आवश्यकता मनुष्य रूपी पुस्तक का अध्ययन करना है क्योंकि मनुष्य के लिए महानतम अध्ययन मनुष्य का अध्ययन है (पुस्तक का नहीं)।

मनुष्य जब एक बार आत्मा के पृष्ठ खोलने योग्य हो जाता है और देखता है कि उसमें महान और अनंत सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं, तो उसमें एक नये प्रकार की जागृति आती है और उसमें छाया रहित स्वयंभू ज्योति का उदय होता है। इसी को पुनर्जीवन, नया जन्म या नवजागृति कहा जाता है। तब उसके अनंत दुखों, पीड़ाओं, इच्छाओं व कठिनाइयों का अंत हो जाता है और उसकी आत्मा प्रभुत्व अथवा दैवत्व में स्थापित हो जाती है, जो उसका निज स्वरूप है। इस प्रकार सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर आत्मा अपने निज स्वरूप में आकर, अपने सच्चे दिव्य स्वरूप को पहचान जाती है और अपने स्रोत या'नी चेतनता के महासागर (प्रभु) को जानने और ढूँढ़ने का प्रयास करती है, जो कि तीन महान तत्त्वों– जीवन, ज्योति और प्रेम से ओत–प्रोत है। इस सर्वोच्च सत्य को प्राप्त करके आत्मा को सदा का आनंद और शांति मिलता है। परन्तु आत्मा के विकास की यह प्रक्रिया, जो ब्रह्मांडीय चेतनता में पहुँचकर पूर्ण होती है, किसी प्रभु–रूप महापुरुष की कृपा से ही संभव है। सृष्टि के प्रारम्भ से यही मूल नियम रहा है, जिसमें बदलाव की कोई गुंजाइश नहीं। जैसे एक परमात्मा है और एक ही सत् है, वैसे ही उसको पाने का मार्ग भी एक ही है, और वह है संतों का मार्ग। यह मार्ग कोई अन्य नहीं वरन् 'सुरत–शब्द योग' है। इसकी एक मुसलमान फ़क़ीर ने पुष्टि की है :

सद किताबों सद वरक़ दर नार कुन,
दिल बयादे हक़ चूँ गुलज़ार कुन।

अर्थात् सारी पुस्तकों को आग लगा दो और प्रभु का निरन्तर सुमिरन करके, अपने मन को अल्लाह (प्रभु) की फुलवारी (गुलज़ार) में बदल दो।

वेदों और उपनिषदों में वर्णन आता है कि धर्मग्रंथों के अध्ययन व श्रवण करने से आत्म–अनुभव व आत्म–सिद्धि की प्राप्ति असंभव है, क्योंकि आत्मा, मन तथा बुद्धि– दोनों की पहुँच से परे है। किसी महापुरुष की कृपा द्वारा आत्मा के अंतरीय अनुभव से ही इस अवस्था की प्राप्ति हो सकती है।

ऋग्वेद के पहले मंडल के 164वें सूक्त के 39वें श्लोक में और श्वेताश्वतरोपनिषद् के चौथे अध्याय के आठवें श्लोक में कहा गया है :

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

अर्थात् जो मनुष्य उस मूल कारण को जान लेता है, जो अपने आप हर जगह मौजूद है, जो कि वेदों की आत्मा है और जिससे सारे देवी–देवता सत्ता लेते हैं, उसे वेदों से कोई सरोकार नहीं रहता। वास्तविक शांति केवल उन्हें ही मिलती है, जो प्रभु में लीन हो चुके हैं।

यदि मनुष्य चारों वेदों, 18 पुराणों, 9 व्याकरणों, 6 शास्त्रों (भारतीय तत्त्वज्ञान की 6 शाखायें) और समस्त संसार के संपूर्ण धर्मग्रंथों में पारंगत भी हो, फिर भी वह प्रभु से पहले जितना ही दूर रहेगा। जब तक उसकी आत्मा 'नाम' या 'शब्द धारा' (व्यक्त प्रभु सत्ता) से नहीं जुड़ती, तब तक वह संसार में चंडूल पक्षी (तोते) के समान है, जो फ़ौरन उन शब्दों को दोहरा देता है, जो उसने सुने हुए हों।

समस्त दार्शनिक तर्क–वितर्क मंद तथा मोटी बुद्धि से उपजते हैं और सिरदर्द ही पैदा करते हैं। इसलिए उपयुक्त यही होगा कि हमेशा के लिए सारे ज्ञान–ध्यान को एक किनारे रखकर शांति के मूल, 'सत्' को ग्रहण कर लिया जाए, जो कि सारे सुख व आनंद का आधार है। बुल्लेशाह, गुरु नानक तथा अन्य महापुरुष भी यही बात कहते हैं। बुल्लेशाह कहते हैं :

फड़ नुकता छोड़ हिसाबां नूं।।
कर दूर कुफ़्र दिआं बाबां नूं।।

— कुल्लीयाते–बुल्लेशाह (पृ.20)

गुरु नानक साहिब कहते हैं :

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़अहि जेते मास।।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰467)

फिर कहा :

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰641)

मशहूर फ़ारसी कवि, हाफ़िज़ साहिब तो यहाँ तक कहते हैं :

ता फ़ज़ल ओ इल्म बीनी बे मअरफ़त नशीनी,
यक़ नुक़्ता अत बिगोयम ख़ुद रा मबीं किह् रुस्ती।

– दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.385)

अर्थात् जब तक इंसान बुद्धि की दौड़ धूप को नहीं छोड़ता, वह असलियत से अनभिज्ञ रहता है। उसे एक बात याद रखनी चाहिए कि यदि वह अपने समस्त दुखों व बंधनों से मुक्त होना चाहता है, तो उसे अपने स्थूल शरीर से ऊपर उठना होगा।

किसी भी समस्या को हल करने के लिए हमें मन और आत्मा से पूरी कोशिश करनी होगी। उपनिषद् पुकार–पुकार कर कहते हैं कि आत्म–विद्या या आत्म–ज्ञान का तभी अभ्युदय होता है, जब इंद्रियों का दमन हो, मन खड़ा हो तथा बुद्धि शांत हो। दुनियावी ज्ञान एक आध्यात्मिक व्यक्ति के गले में फूलों का हार है, परन्तु एक दुनिया में लिप्त इंसान के लिए काँटों का ताज है। मौलाना रूमी फ़रमाते हैं :

इल्महा-ए-अहले-दिल हम्माले-शां,
इल्महा-ए-तन अहमाले-शां।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.355)

अर्थात् किताबी ज्ञान आध्यात्मिक पुरुष का आभूषण है, पर दुनियावी लोगों के लिए सिरदर्द है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णन आता है कि,

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।।

— बृहदारण्यक उपनिषद् (4.4.10)

अर्थात् एक अशिक्षित व्यक्ति घोर अंधकार में विचरता है, परन्तु शिक्षित उस से भी गहन अंधेरे में निवास करता है।

क्यों? क्योंकि अधिक शिक्षा पाया व्यक्ति संतों की शान और महानता तथा उनके आदेशों से (अपने बुद्धि के अहंकारवश) अधिकतर अनभिज्ञ रह जाता है।

संत और ऋषिगण इसीलिए आध्यात्मिक जीवन पर अधिक बल देते हैं। उनकी दृष्टि में पुस्तकीय ज्ञान की कोई ख़ास क़ीमत नहीं। सुनने–सुनाने से प्राप्त विवेक और पुस्तकों से अर्जित ज्ञान निर्जीव हैं, इसीलिए ये किसी भी व्यक्ति को जीवन–अंश नहीं दिला सकते। यह ऐसा है, जैसा कोई मिठाई की बातचीत करते जाए, पर उसे चखकर न देखे। मनुष्य चाहे तो एक सदी तक 'हलवा–हलवा' दोहराता जाए अथवा उसके बनाने में इस्तेमाल की जाने वाली वस्तुओं का ध्यान ही करता रहे, परन्तु इस प्रकार वह न तो हलवे की सुगंध ही प्राप्त कर सकेगा, न ही उसकी कोई तृप्ति होगी जब तक वह स्वयं उसे खा न ले। भाई गुरुदास ने भी कहा है :

खांड खांड कहै जिहवा न स्वाद मीठो आवै
अगनि अगनि कहै कहै सीत न बिनास है।।
बैर बैद कहै रोग मिटत न काहू को
दरब दरब कहै कोऊ द्रबहि न बिलास है।।
चंदन चंदन कहत प्रगटै न सुबास वासु
चंदु चंदु कहि उजियारो न प्रगास है।।

तैसे गिआनि सटि कहत न करत पावै
करनी प्रधान भानु उदति आकास है।।

— कवित्त सवैये (437)

अर्थात् खांड–खांड कहने से मिठास नहीं आती, आग–आग कहने से ठंड नहीं भागती, वैद्य–वैद्य कहने से बीमारी नहीं जाती, दुख–दुख कहने से उससे छुटकारा नहीं मिलता, चंदन–चंदन कहने से उसकी ख़ुश्बू नहीं आती, चाँद–चाँद कहने से रोशनी नहीं होती और ज्ञान–ज्ञान कहने से अज्ञान दूर नहीं होता; करनी करने से ही अन्तर में प्रकाश होता है।

15.
संतों का मार्ग :
उसके तीन स्तंभ

अध्यात्म में सफलता तीन तत्त्वों पर निर्भर है : **1.** सत्संग **2.** सत्गुरु **3.** सतनाम या शब्द।

1. सत्संग :

'सत्सग'– यह दो शब्दों से मिलकर बना है– 'सत्' अर्थात् सदैव रहने वाला अपरिवर्तनशील प्रभु, और 'संग' जिसका अर्थ है, जुड़ना अर्थात मेल होना। इस प्रकार 'सत्संग' शब्द का अर्थ है, प्रभु से मिलन होना। इस अवस्था का अनुभव आत्मा के द्वारा केवल उस समय किया जा सकता है, जब वह अपने ऊपर के तीनों आवरणों, स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण से स्वतंत्र हो जाए। सत्संग का दूसरा अर्थ किसी जीवित पूर्ण पुरुष, जो कि 'शब्द देहधारी' हो, जीवन–धारा से ओत–प्रोत हो, का साथ भी है। उसके अन्दर 'सत्' अर्थात जीवन पूर्ण रूप से प्रकट होता है। वह शुद्ध अध्यात्म की शिक्षा देता है, जिसके अभाव में व्यक्ति इंद्रियों के घाट पर लिप्त होकर भ्रम तथा अस्थिरता का जीवन व्यतीत करता है (जो कि चिर–जीवन के विपरीत है)।

सत्गुरु बतलाता है कि मन, इंद्रियों तथा बुद्धि के अतिरिक्त एक अन्य शक्ति है, जो इन सबसे महान है और जो इन सबको जीवन प्रदान करती है; वह है, आत्मा। यही शरीर को चलाने वाली एकमात्र शक्ति है, परन्तु दुख का विषय है कि हम इससे पूर्णतया अनभिज्ञ हैं और हमने कभी इस पर विचार तक नहीं किया। यह सभी समस्याओं की मूलभूत है, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा मार्मिक समस्या, फिर भी सबसे अधिक उपेक्षित। जिस प्रकार अग्नि के पास बैठने से गर्मी तथा बर्फ़ के निकट

रहने से ठंडक प्राप्त होती है, उसी प्रकार सत्गुरु के संपर्क में आने से जिज्ञासु अध्यात्म के रंग में रंगा जाता है। मौलाना रूमी ने कहा है :

गुफ़्त पैग़म्बर किह् हक़ फ़रमूदा अस्त,
मन नगुंजम हेच दर बाला ओ पस्त।
दर ज़मीनो आसमानो अर्श नीज़,
मन नगुंजम ईं यक़ीं दान ऐ अज़ीज़।
दर दिले-मोमिन बगुंजम ऐ अजब,
गर मरा ख़्वाही जूई दरां दिलहा तलब।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.282)

अर्थात् परमात्मा ऊँचे से ऊँचे आसमानों या नीचे से नीचे पातालों में निवास नहीं करता, क्योंकि कोई भी स्थान उसके लिए पर्याप्त नहीं। परन्तु वह एक प्रभु भक्त या मोमिन के दिल में समा जाता है।

कबीर साहिब का भी कहना है :

मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास।
गगन मंडल खाली पड़ा, साहिब संतों पास।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (साध का अंग 36, पृ.120)

अर्थात् मेरा मन एक पंछी के समान आसमानों में ऊपर उड़ा, परन्तु स्वर्ग लोक खाली पड़ा था, क्योंकि परमात्मा तो संतों के पास था।

इस अवस्था को प्राप्त किया हुआ संत एक बिजली के खटके (स्विच) के समान है, क्योंकि उसमें पावर हाउस की सारी शक्ति केंद्रित है। दूसरे शब्दों में, सत्गुरु एक सुरक्षित समुद्र तट है, जहाँ कोई भी व्यक्ति आकर आराम से समुद्र में डुबकी लगा सकता है। इस प्रकार सत्संग को आंकने की कसौटी यह है कि उसमें जो उपदेश दिया जाता है, वह आत्मा तक सीमित होता है : आत्मा क्या है? उसका स्वभाव, मानव जीवन में उसका स्थान और महत्त्व, उसका अनंत स्रोत और उसे कैसे प्राप्त किया जाए? इस प्रकार महापुरुष हमें बताते हैं कि संसार के दुख–दर्द, क्षय और मृत्यु से, जिनसे सभी प्राणी पीड़ित हैं, कैसे छुटकारा पाया जा सकता है।

सत्संग के दो प्रकार हैं : बाह्य व आंतरिक।

बाह्य सत्संग : यह बाहर का सत्संग है। इसका अर्थ है, किसी सत्गुरु की संगत करना, उनके आध्यात्मिक प्रवचनों या उनकी चर्चाओं का श्रवण करना। इन प्रवचनों में सत्गुरु आत्म–साधन के विषय में वर्णन करते हैं और अत्यंत प्रेम सहित, बड़े ही निराले ढंग से आत्म अभिलाषियों को आत्म–सिद्धि या आत्म–साक्षात्कार के लिए कुछ समय निकालने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि यही परमात्मा से साक्षात्कार की पहली व अंतिम अनिवार्यता है। सत्गुरु के इस कार्य को हम अध्यात्म–विज्ञान का पाठ्यक्रम या सैद्धांतिक पक्ष (theory) कह सकते हैं। गुरुवाणी में आता है :

मिलि सतसंगति खोजु दसाई विचि संगति हरि प्रभु वसै जीउ।।

– आदि ग्रंथ (माझ म.4, पृ.94)

सतसंगति कैसी जाणीऐ।। जिथै एको नामु वखाणीऐ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰72)

फिर कहा :

सतिगुर बाझहु संगति न होई।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1068)

आंतरिक सत्संग : यह अन्तर का सत्संग है, जो मानव शरीर रूपी प्रयोगशाला में किसी सत्गुरु के आदेश अनुसार प्रवेश करके प्राप्त होता है। सुमिरन व ध्यान (एकाग्रता) द्वारा आत्मा देहाभास से ऊपर उठती है और अंत में भजन की प्रक्रिया द्वारा वह 'धुन' या 'शब्द–धारा' को पकड़ लेती है, जो कि हर आत्मा और परमात्मा के बीच सीधी कड़ी है। इस प्रकार आत्मा धीरे–धीरे मोक्ष पा जाती है अर्थात् दुख, विनाश तथा मृत्यु से, जो कि नाशवान प्राणियों के सबसे बुरे दुश्मन हैं, छुटकारा पा जाती है। सत्गुरु के मिशन (Mission) के इस भाग को 'सुरत–शब्द योग' कहा जाता है और यह अध्यात्म विज्ञान का व्यावहारिक (practical) पक्ष है।

2. सत्गुरु :

संत या सत्गुरु प्रभु का चलता–फिरता रूप है, क्योंकि उसमें जीवन, ज्योति व प्रेम– जो कि प्रभु के तीन गुण हैं– वे पूर्णरूपेण पाए जाते हैं।

वह 'सत्' अर्थात सच्चे जीवन, सच्चे प्रकाश और सच्चे प्रेम से सराबोर होता है। वह प्रभु–प्रेम का स्त्रोत है और समस्त जिज्ञासुओं को परम् पद की ओर ले जाने में समर्थ है। वह अध्यात्म के महान पथ का सच्चा पथ प्रदर्शक है। वास्तव में वह प्रभु देहधारी है। उसी की कृपा से प्रभु से सम्पर्क संभव है, क्योंकि यह काम कोई दूसरा नहीं कर सकता। धर्मशास्त्र चाहे हमें अध्यात्म के बारे में बहुत कुछ बता दें, क्योंकि इनमें प्राचीन संतों, महात्माओं के आध्यात्मिक अनुभवों का अद्भुत वर्णन है, परन्तु ये हमें अध्यात्म का जीवित सम्पर्क और वास्तविक अनुभव करा देने में असमर्थ हैं। रूहानियत, छूत की बीमारी की तरह से उस व्यक्ति की प्रेम से ओत–प्रोत आँखों से पकड़ी जा सकती है, जो स्वयं रूहानियत से सराबोर हो। जिस प्रकार एक जलती हुई मोमबत्ती अनेक और मोमबत्तियों को जला सकती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन ज्योति भी जीवित आध्यात्मिक व्यक्ति द्वारा जगाई जाती है।

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।। नानक अवरु न जीवै कोइ।।

– आदि ग्रंथ (माझ वार म॰1, पृ॰142)

पूर्ण पुरुष में सचमुच प्रभु बोलता है। परमात्मा संतों व ऋषियों के द्वारा बोलता है तथा पैग़म्बरों के द्वारा अपने आपको प्रकट करता है। जीवित सत्गुरु की संगत का मिलना सबसे बड़ा सौभाग्य है। उनकी प्यार भरी दृष्टि तथा दया से भरे वचन मानव आत्मा में आध्यात्मिक आनन्द का स्त्रोत खोल देते हैं। वे किसी भी क्षण रूहानियत का वज्र–किवाड़ खोल सकते हैं और एक मृतप्रायः आत्मा को जीवन के अमृत से सराबोर कर सकते हैं। वे जीवन की रोटी और जीवन का पानी हैं– जो भी उनका उपभोग करते हैं, उन्हें अमर जीवन प्राप्त होता है तथा वे सदा के लिए प्रभु के प्रकाश में विचरते हैं। क्राइस्ट का कहना है :

मेरे द्वारा दिए हुए पानी को पीने वाला फिर कभी प्यासा नहीं रहेगा क्योंकि जो पानी मैं उसे दूँगा, वह उसके अन्दर अमर जीवन देने वाला सोता बन जाएगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3.14)

मैं संसार की ज्योति हूँ, जो मेरा अनुसरण करेगा वह अंधकार में नहीं रहेगा, वरन जीवन की ज्योति को प्राप्त करेगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8.12)

परन्तु बहुत कुछ जिज्ञासु की सादग़ी व लगन, उसकी प्रेम भरी भक्ति और विश्वास और इनसे भी ऊपर, उसकी ग्रहणशीलता पर निर्भर है, क्योंकि जो पहले से ही भरा हुआ (अहंकार से) आता है, वह और कुछ ग्रहण नहीं कर सकता।

गुरु या सत्गुरु एक आदर्श इंसान है। उसका शरीर वह स्तंभ है, जहाँ से प्रभु प्रेम की किरणें पूरे संसार में फैलती हैं और जो कोई भी उसके पास आते हैं, वे प्रेम की इन लहरों को महसूस करते हैं।

3. सतनाम :

यह इज़हार में आई क्रियाशील प्रभु सत्ता का निज नाम है, जो सारी सृष्टि को चलाने वाली है। सेंट जॉन (बाइबिल में) इसके विषय में कहते हैं :

आदि में शब्द था, शब्द प्रभु के साथ था और प्रभु ही शब्द था। यह आदि में प्रभु के साथ ही था। प्रत्येक वस्तु उसी द्वारा बनाई गई और उसके बिना कोई ऐसी वस्तु नहीं बनी, जो कि बनाई गई थी। उसमें जीवन था और वह जीवन मानव का प्रकाश था। वह प्रकाश अंधकार में चमकता है, पर अंधेरा उससे अनभिज्ञ है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:1-5)

इसी शब्द को मुसलमान 'कलमा' कहते हैं, जिससे 14 तबक़ अर्थात् खंड बने, जिनमें कि संपूर्ण सृष्टि विभाजित है। हिन्दू इसको 'नाद' कहते हैं, जिससे 14 मंडल या भवन बने। सिक्ख धर्मग्रंथ इसको 'शब्द' या वाणी, उपनिषद् इसी को 'उद्‌गीत' और वेद इसे 'श्रुति' या 'आकाशवाणी' कहते हैं। संत इसे 'नाम' या 'शब्द' कहते हैं तथा कोई स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ इसकी कंपन का इज़हार न होता हो। तो फिर,

'नाम' या 'सतनाम' सारी सृष्टि को नियंत्रित करने वाली शक्ति है। यह एक ऐसी महान शक्ति है, जो विषम विभिन्नता वाले अनेक तत्त्वों को एक साथ जोड़कर इस रंग–बिरंगे सृष्टि रूपी भवन को बनाती है। सारी सृष्टि में यही जीवन–सूत्र विद्यमान है और इस प्रकार सृष्टा व उसकी सृष्टि को जोड़ने वाली कड़ी भी यही है। कबीर साहिब ने कहा है :

राम नाम है निज सार।। अवर सब झूठ सकल संसार।।
सिमरन करहु सो राम को, काल गहे है केस।
न जानूँ कब मारसी, किआ घर किआ परदेस।।
सो जाने जेही मैं ही जनाऊं, बांहि पकड़ लैके लै आऊं।।
सहज जाप धुनि आपे होई।।
संधी बूझे बिरला कोई।।
रग रग बोले राम जी रोम रोम राकार।
सहजे धुनि लागी रहे सोइ सिमरन सार।।
ओठ, कंठ हाले नहीं, जीभा नहीं उचार।
गुप्त वस्तु को जो लखे, सोई हंस हमार।।

— कबीर समग्र भाग 2 (पृ॰496)

रमत राम जनम मरणु निवारै।।
उचरत राम भै पारि उतारै।।

— आदि ग्रंथ (गोंड म॰5, पृ॰865)

ब्रह्मविद्यावादियों (Theosophists) के अनुसार यह 'चुप्पी की आवाज़' है, क्योंकि इसको आत्मा की शांति में ही सुना जा सकता है। जीवन की यह प्राणधारा मन की गहराई में अनुभव की जा सकती है। यह अनुभवजन्य वस्तु है, जो किसी सत्गुरु की दया–मेहर से व्यक्ति के अन्तर में ही महसूस की जा सकती है।

16.
संतों का मार्ग :
तीन प्रकार की साधनाएँ

व्यक्ति चार अलग–अलग शरीर रखता है :

1. स्थूल शरीर, जो अधिकतर ठोस तत्त्वों का बना हुआ है,

2. सूक्ष्म शरीर, जो सूक्ष्म तत्त्वों से बना हुआ है,

3. कारण शरीर, जो पहले दोनों को संभाले हुए है, तथा

4. महाकारण या बीज शरीर।

आत्मा इन चार शरीरों द्वारा कार्य करती है। ये चारों शरीर जल्दी या देरी से नष्ट हो जाते हैं, परन्तु आत्मा अविनाशी है, सदा रहने वाली है और इसलिए काल के चक्र से परे है। यह ईश्वरीय भट्टी की एक चिंगारी है, जहाँ कि जीवन धारा को संसार का रूप दिया जाता है और संसार अस्तित्व में आ जाता है। मानव शरीर सच्चा हरि–मन्दिर है और यह पिंड ब्रह्मंड के अनुरूप ही चल रहा है।

जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजे सो पावै ।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी पीपा, पृ॰695)

केवल सत् अर्थात् 'नाम' अदृश्य रूप से संपूर्ण सृष्टि तथा मनुष्य, दोनों में ही कार्य कर रहा है। परमात्मा और आत्मा दोनों तत्त्वतः एक ही हैं। प्रभु को जानने से पूर्व आत्मा का ज्ञान परमावश्यक है, जो कि अन्तर में है। आत्म–विश्लेषण (self-analysis) द्वारा अपने आपको जाने बग़ैर अन्तर और बाहर की एकरूपता (oneness) का उदय नहीं होता। मुसलमान फ़क़ीरों का भी कहना है कि आलमे–सग़ीर (छोटा लोक अथवा पिंड), आलमे–कबीर (ब्रह्मंड) के नमूने पर बना है।

इंसान को तीन नेमतें मिली हैं। इंसान सब योनियों की सरदार योनि है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य पूर्ण मानव बनना है। ईसाई धर्म का एक प्रमुख सिद्धांत है,

तुम भी स्वर्ग में स्थित अपने पिता के समान पूर्ण बनो।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:48)

कबीर साहिब का भी कहना है :

साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (साध का अंग 34, पृ.117)

यह पूर्णता तीन प्रकार से होनी चाहिए : शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक। कुछ सीमा तक तो व्यक्ति को अपने प्रयत्नों पर निर्भर रहना है, परन्तु बहुत कुछ बाहरी सहायता पर निर्भर है। अगर फलदार वृक्ष को उसके हाल पर न छोड़कर, उसकी वैज्ञानिक तौर से देखभाल की जाए तो फल बहुत जल्द आते हैं। यही सिद्धांत और भी प्रबलता से चेतन व विवेकवान प्राणी, मनुष्य पर लागू होता है। मानव किसी महापुरुष की सहायता प्राप्त करके बहुत जल्दी और बड़ी सुविधापूर्वक आध्यात्मिक अनुभवों को पाने योग्य बन सकता है, जो अन्यथा किसी प्रकार संभव नहीं। परन्तु यह किसी पूर्ण सत्गुरु की संगत व सहायता पर निर्भर है, जो केवल अध्यात्म का तात्त्विक ज्ञान ही नहीं, उस विज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव देने में भी पारंगत (निपुण) हों।

आगे, जिज्ञासु को भी अपने भोजन, व्यवहार तथा वातावरण का विशेषतया ध्यान रखना होता है, क्योंकि इन सभी का मन तथा शरीर पर तीव्र प्रभाव पड़ता है। सादा सात्विक भोजन (माँस, मछली, चूज़े, अंडे का परहेज़), नशे की वस्तुओं, व्यर्थ की बातों और व्यर्थ की क्रियाओं का परित्याग तथा सांसारिक आकर्षणों से स्वाभाविक अरुचि आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वालों के लिए आवश्यक बताए गए हैं। उपरोक्त आधार होने पर, साधक को इन साधनाओं हेतु दीक्षित किया जाता है, जो कि उसकी आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं :

(1) सुमिरन या सिद्ध नामों का मन ही मन जाप
(2) ध्यान या आध्यात्मिक चिंतन, तथा
(3) भजन या 'शब्द धुन' को सुनना

वर्तमान में हमारा मन संसार व सांसारिक पदार्थों की याद में इतना तल्लीन है कि वह उन्हीं का रूप बन बैठा है। हमें यह भी भान नहीं कि हम इनसे अलग हैं। हम अंतर्मुख होने का कितना ही प्रयत्न करें, परन्तु ऐसा कर नहीं सकते। कभी मित्र, सगे–संबंधी, तो कभी दफ़्तर की फ़ाइलें व किताबें, कचहरी और विधि की पुस्तकें, दवाई और बीमारी, लाभ व हानि व मज़दूरी–हड़ताल इत्यादि मन के पर्दे पर चल–चित्र के समान आते रहते हैं। मन को इन सबसे ख़ाली करने के लिए प्रभु के नाम का सुमिरन करना पड़ता है। इसीलिए संत साधक को मन की जिह्वा द्वारा सिमरन और मन की आँख द्वारा ध्यान लगाने का आदेश देते हैं। इन दोनों मानसिक क्रियाओं के द्वारा मन धीरे–धीरे स्थिर होता है और इसकी हलचल की प्रवृत्ति में शांति आ जाती है। तत्पश्चात् मन के कानों द्वारा 'मौन की ध्वनि' अर्थात् शब्द को सुनना होता है।

हम सबके अन्तर में 'नाम' या 'शब्द' का प्रवाह हर समय ठाठें मार रहा है, क्योंकि यह सबका जीवन आधार है। आत्मा एवं 'शब्द' धारा तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। इसमें एक ऐसा अलौकिक संगीत है, जिसको सुनकर मन का सहस्त्रमुखी नाग पूर्णतया आज्ञाकारी हो जाता है। वर्तमान में सुरत (जो आत्मा का बाहरी रूप है) मन के अधीन हो रही है। यह 'शब्द' धुन की ओर आकर्षित होती है तथा अंत में अन्तर के संगीत में लीन हो जाती है। इस स्थिति को पा जाने के बाद उसका मन के नियंत्रण में रहना संभव नहीं रहता। फलतः असहाय होकर मन बस में आ जाता है और आत्मा के नियंत्रण में रहता है। आत्मा देहाभास से ऊपर उठकर 'शब्द धुन' से खिंची चली जाती है और अपना अलग अस्तित्व छोड़कर उस 'शब्द धारा' से एकमेक हो जाती है। इसके पश्चात् व्यक्ति संसार में रहकर अपनी आयु के शेष दिन तो गुज़ारता है, पर अब वह जीवनामुक्त है। अब वह मन एवं इंद्रियों का दास न रहकर प्रभुपद में पूर्णतया लीन हो जाता है और सदा के लिए अंतरीय ईश्वरीय ज्योति का लाभ लेता

है और अपनी आत्मा में दैवी संगीत का अनुभव करता है। आत्म–सिद्धि या आध्यात्मिक साधना के तीनों पहलुओं की पूर्ण जानकारी साधक को दीक्षित करते समय सत्गुरु द्वारा दे दी जाती है।

सुमिरन तथा ध्यान से सुरत की धारा शरीर में से सिमट कर शनैः–शनैः दो आँखों के बीच, आत्मा के ठिकाने पर केंद्रित हो जाती है। इस स्थान से आत्मा 'शब्द' धारा को पकड़कर ऊपर उठती है और विभिन्न मंडलों को पार कर अपने निजधाम अर्थात् सचखंड या मुक़ामे–हक पहुँचती है, जो कि इस 'शब्द धारा' का मूल व उद्गम है। सही अर्थों में इसे ही मोक्ष, मुक्ति, आवागमन का अंत, छुटकारा, निर्वाण आदि कहते हैं।

संक्षिप्त जीवन चरित्र -
संत कृपाल सिंह जी महाराज

संत कृपाल सिंह जी महाराज 6 फ़रवरी, 1894 ई. में, ज़िला रावलपिंडी के एक छोटे से गाँव, सय्यद कसरां में, एक संभ्रांत सिक्ख घराने में पैदा हुए। रखने वालों ने नाम भी चुनकर रखा, 'कृपाल', जिसने दयामेहर के ख़ज़ाने, दोनों हाथों से लुटाये और रूहानियत (आत्म–ज्ञान) की दौलत से दुनिया को मालामाल कर दिया।

अध्ययनशील विद्यार्थी

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' बचपन ही से महापुरुषों के लक्षण आप में दिखाई देने लगे थे। घर से खाने–पीने की जो चीज़ें इन्हें मिलतीं, वे सब अपने साथी बालकों को बाँट देते और आप किसी एकान्त स्थान में जाकर ध्यान में लीन हो जाते। इनका बचपन का ज़माना अनगिनत चमत्कारों से भरा पड़ा है, जिनके कारण 6 वर्ष की आयु से ही लोग इन्हें संत मानने लगे थे। इनका विद्यार्थी जीवन ज्ञान प्राप्ति और अध्ययनशीलता की अथक लगन का नमूना था। स्कूल की पढ़ाई के ज़माने में कॉलिज की पूरी लायब्रेरी की किताबें आपने पढ़ डाली थीं।

ज्ञान प्राप्ति की अनन्य लगन

आप मिशन स्कूल में पढ़ते थे, जहाँ ईसाई पादरी अक्सर वक्तव्य देने आया करते थे। एक बार एक पादरी साहिब स्कूल में आए और उन्होंने एक–एक कक्षा में जाकर विद्यार्थियों से उनकी इच्छाओं–आकांक्षाओं और जीवन के आदर्श के बारे में कई सवाल पूछे। जब इनकी (कृपाल सिंह जी की) कक्षा में पहुँचे, तो पादरी साहिब ने पूछा, "बच्चों! तुम किस लिए पढ़ रहे हो? पढ़–लिख कर तुम क्या बनना चाहते हो?"

अपनी–अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न उत्तर लड़कों ने दिए। किसी ने कहा, मैं पढ़ाई ख़त्म करके डॉक्टर बनूँगा, किसी ने कहा, मैं इंजीनियर बनूँगा, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ कहा। रस्मी से जवाब थे जिनके पीछे एक ही उद्देश्य था, कि पढ़–लिख कर रोज़ी पैदा की जाए। जब कृपाल सिंह जी की बारी आई तो इन्होंने कहा, "I read for the sake of knowledge", अर्थात् मैं ज्ञान प्राप्ति के लिए पढ़ रहा हूँ। पादरी साहिब यह जवाब सुनकर बहुत ख़ुश हुए और भविष्यवाणी की कि यह लड़का एक दिन दुनिया में नाम पैदा करेगा।

यह जवाब ज्ञान प्राप्ति के लिए उनकी अनन्य लगन का परिचायक था, जो इन्हें उस परम ज्ञान की मंज़िल तक ले गया, जिसको पाकर सब कुछ जाना हुआ और पाया हुआ हो जाता है।

जन-कल्याण की प्रेरणा

संत कृपालसिंह जी ने पूर्व और पश्चिम के परमार्थाभिलाषियों के पथ–प्रदर्शन के लिए अनेकों ग्रंथ लिखे हैं, लेकिन सबसे बड़ा ग्रंथ उनका अपना जीवन है, जिसके महत्त्वपूर्ण दृष्टांत, अंधेरी रात में चमकते तारों के समान जीवन–पथ के यात्री को रास्ता दिखाते हैं। 12 वर्ष की आयु में, श्री रामानुज के जीवन वृत्तांत में उन्होंने पढ़ा कि जब वे गुरु से दीक्षा लेकर वापिस घर लौटे तो गाँव के लोगों को इकट्ठा करके वह गुप्त मंत्र, जो गुरु से उन्हें मिला था, बताने लगे। लोगों ने टोका कि यह तुम क्या कर रहे हो, गुरुमंत्र बताना महापाप है, नरकों में जाओगे। रामानुज ने कहा, "अकेला मैं ही नरकों में जाऊँगा ना! ये सारे लोग तो बच जायेंगे।" आप फ़रमाते हैं, "यह वृत्तांत पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ और मैंने सोचा कि यदि आत्मज्ञान की यह दात कभी मेरे हाथ आई, तो मैं भी इसे इसी तरह मुफ़्त लुटा दूँगा।"

जीवन का लक्ष्य

1911 ई. में आपने मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास की। उस वक़्त आप की आयु 17 वर्ष की थी। अब यह सवाल सामने आया, जो पढ़ाई ख़त्म होने पर हरेक विद्यार्थी के सामने आता है, कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है?

मुझे ज़िंदगी में क्या काम करना है? आप फ़रमाते हैं, "पूरे सात दिन मैंने इस सोच में गुज़ार दिए और अंत में फ़ैसला किया कि मेरे लिए परमात्मा पहले है, दुनिया बाद में।" फिर सारा जीवन इस आदर्श– प्रभु–प्राप्ति के लिए लगा दिया।

महान जीवन की तैयारी

महाराज कृपाल सिंह जी के बचपन और विद्यार्थी जीवन से यह तथ्य दिन के उजाले की तरह सामने आता है कि उन्हें शुरू ही से उस महान कार्य का, जो आगे चलकर उन्हें करना था, पूर्ण आभास था। बचपन ही से उनका हर क़दम उस महान जीवन की तैयारी के लिए उठता रहा। उस जीवन के लिए असाधारण संस्कार एवं क्षमताएँ आप लेकर आए थे। चार वर्ष की आयु में ही आप ध्यानास्थित होकर अन्तर दिव्य मंडलों में विचरने लगे थे। आप फ़रमाते थे कि सुरत अर्थात् आत्मा के सिमट जाने से नींद का काम पूरा हो जाता था। आत्मा पिंड (स्थूल शरीर) को छोड़ ऊपर दिव्य मंडलों की सैर करके वापिस आती है तो शरीर recharge हो जाता है अर्थात नवजीवन प्राप्त करता है। ये उच्च प्रवृत्तियाँ और संस्कार आप में जन्मजात थे और इनसे आपने जीव–कल्याण के महान कार्य में बड़ा काम लिया।

प्रभु-प्राप्ति की ओर

उन्हीं दिनों एक घटना घटी, जिसने प्रभु तलाश की चिंगारी को, जो इनके हृदय में सुलग रही थी, एक धधकती ज्वाला बना दिया। लाहौर में आप एक जवान औरत का हाल देखने गए, जो बीमार थी और जीवन के अंतिम स्वाँस ले रही थी। सहसा वह अपने रिश्तेदारों से कहने लगी, "मेरा कहा–सुना माफ़ करना, मैं जा रही हूँ।" यह कहकर उसने प्राण त्याग दिए। यह दृश्य देखकर आप सोचने लगे, "वह क्या चीज़ थी जो इस औरत के शरीर से निकल गई है, जिससे यह मुर्दा पड़ी है और हम में वह चीज़ अभी मौजूद है? वह कौन सी ताक़त है, जो हाड़–माँस के इस शरीर को चलाती है और जब इससे निकल जाती है, तो मिट्टी का ढ़ेर बाक़ी रह जाता है?" शव के साथ आप श्मशान भूमि पहुँचे। वहाँ

उस जवान औरत की चिता के पास ही एक बूढ़े आदमी की लाश पड़ी थी। यह दृश्य देखकर ख़्याल आया कि मौत जवानी और बुढ़ापे में कोई फ़र्क नहीं देखती। थोड़ी दूर आगे एक स्मारक पर लिखा था–"ओ जाने वाले! कभी हम भी तेरी तरह चलते–फिरते थे, लेकिन आज मिट्टी का ढेर होके पाँव तले पड़े हैं।" एक के बाद एक, ये तीन दृश्य देखकर दिल को चोट लगी। इसके बाद रातों की नींद उड़ गई। प्रभु–प्रियतम के वियोग में यह अवस्था बनी कि रात को आसुँओं से सारा तकिया भीग जाता। इस तलाश ने कई रंग दिखाये। किताबें पढ़ीं, हरेक समाज के धर्मग्रंथ पढ़े। साधु–महात्माओं से मिले – क्या क्या नहीं किया? यह सवाल आख़िर हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज के चरणों में जाकर हल हुआ।

जीवन की पवित्रता, आत्म–निरीक्षण और निरन्तर अभ्यास से आपको त्रिकालदर्शिता प्राप्त हो गई– पीछे क्या हुआ, आगे क्या होने वाला है, सभी बातें साफ़ दिखाई देने लगीं। आपने प्रार्थना की, "हे प्रभु! मैं तो तुझे पाना चाहता हूँ। ये दैवी शक्तियाँ जो तूने दया करके मुझे प्रदान की हैं, इनका शुक्रिया! इन्हें अपने पास रख। तुझसे यही माँगता हूँ कि मेरा जीवन एक साधारण व्यक्ति की तरह गुज़रे। दूसरे यह कि यदि मेरे हाथों किसी का भला हो, तो मुझे उसका कोई अहसास न हो।" ये दो प्रार्थनाएँ 'कृपाल' के विशाल एवं प्रभु–प्रेम और विश्व–प्रेम से ओत–प्रोत हृदय की अनुपम झाँकी प्रस्तुत करती हैं।

सत्गुरु दयाल से भेंट

धर्मग्रंथों के अध्ययन से आप इस निष्कर्ष पर तो पहुँच चुके थे कि परमार्थ में सफलता के लिए गुरु का मिलना ज़रूरी है, पर हर वक़्त मन में यह डर लगा रहता था कि किसी अधूरे गुरु से वास्ता न पड़ जाए, सारा जीवन बर्बाद न चला जाए। इनके हृदय की सच्ची पुकार प्रभु ने सुनी और वक़्त के संत–सत्गुरु, श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का दिव्य स्वरूप इन्हें अंतर में आने लगा। यह 1917 ई. की बात है, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाने से सात साल पहले की। बाबा सावन सिंह जी महाराज से मुलाक़ात भी एक विचित्र

संयोग था। 1924 ई. की बात है, आप लाहौर में मिलिट्री अकाउंट्स के दफ़्तर में काम करते थे। नदी का तट देखने का शौक़ आपको ब्यास ले गया। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में पहुँचे तो देखा कि ये तो वही महापुरुष हैं, जिनका दिव्य–स्वरूप सात साल से अंतर में पथ–प्रदर्शन करता रहा था। पूछा, "हुज़ूर, श्री चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" हुज़ूर महाराज मुस्कुरा दिए। कहने लगे, "यही वक़्त मुनासिब था।"

आदर्श शिष्य

गुरु की तलाश में कड़ी से कड़ी कसौटी आपने अपने सामने रखी। जब वह मिल गया, तो तन, मन, धन, सब कुछ गुरु को अर्पण कर दिया। गुरु भक्ति की और ऐसी की कि गुरु में अभेद हो गए। इनके महान कल्याणकारी जीवन की मोटी–मोटी बातों को भी बयान करने की यहाँ गुंजाइश नहीं है। वह करन–कारण प्रभु सत्ता, उसे 'नाम' कहो, 'शब्द' कहो, जो मानव तन में प्रकट होकर जीवों का कल्याण करती चली आई है, इनके अन्तर में प्रकट होकर, पूर्व से पश्चिम तक, जीवों को प्रभु से जोड़ती रही। यह उसका प्रताप था कि भारत के सभी वर्गों, जातियों व समाजों के अतिरिक्त यूरोप और अमरीका में सभी मतों के ईसाइयों, इसराइल के यहूदियों, भारत, पाकिस्तान और अरब देशों के मुसलमानों, अफ़्रीका और अमरीका के हबशियों, तिब्बत, मलाया व अन्य पूर्वी देशों के बौद्धों का प्रेम, प्यार व सम्मान इनको प्राप्त था। इनके दीक्षितों में विश्व के लगभग सभी देशों, जातियों, विचारधाराओं तथा समाजों के लोग शामिल हैं।

महाराज कृपाल सिंह जी को पुरबले संस्कारों तथा गुरु कृपा के प्रताप से देह स्वरूप में गुरु (परम संत श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज) से मिलाप होने से सात साल पहले ही गुरुमुख की अवस्था प्राप्त हो चुकी थी। लम्बी खोज के बाद जब देह स्वरूप में सत्गुरु दयाल के दर्शन हुए, तो बरबस इनके मुख से निकला, "हुज़ूर! अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" कोई पूछ–ताछ नहीं, कोई सवाल–जवाब नहीं,

सात साल से अन्तर दिव्य मंडलों में जो महापुरुष मार्गदर्शन करते रहे, उनसे सवाल–जवाब की गुंजाइश ही कहाँ रह गयी थी? शिष्य के सवाल के पीछे लम्बी खोज की, विरह वेदना की, लम्बी कहानी थी। गुरु के उत्तर में उसकी (गुरु के मानव तन में काम करने वाली प्रभु सत्ता की) मौज या इच्छा का इशारा था, स्पष्ट संकेत था इस बात का कि इस सारी प्रक्रिया में इंसानी कोशिशों का दखल नहीं, यह उसी परम सत्ता का काम है जो गुरु के चोले में प्रकट होकर जीवों का उद्धार अर्थात् उन्हें तन–मन से ऊपर लाकर प्रभु से जोड़ने और मिलाने का काम करती है। गुरु शिष्य की कहानी उस पहली मुलाकात ही में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी, किन्तु प्रभु रूप महापुरुषों का जीवन अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए हुआ करता है। वे ज़िंदगी की कलम से लिखी एक खुली किताब होते हैं, जीवन पथ के यात्रियों के मार्गदर्शन के लिए। अपनी जीवन यात्रा में वे जिज्ञासुओं के लिए पद–चिन्ह छोड़ जाते हैं, इसलिए उनकी कहानी चरम पर पहुँच कर भी एक शुरूआत बन जाती है। जैसे अध्यापक प्राइमरी में प्राइमरी की, मिडिल में मिडिल की और एम. ए. में एम. ए. की योग्यता दर्शाता है, इसी तरह महापुरुष पूर्ण होते हुए भी गृहस्थी, जिज्ञासु, सेवक और शिष्य–सारे आदर्शों को अपने जीवन में प्रस्तुत करते हैं।

गुरु और गुरुमुख की कहानी

ग्रहणशीलता से पिता–पूत की, गुरु और गुरुमुख की कहानी शुरू होती है, जो विकास की विभिन्न स्थितियों से गुज़र कर उस मंज़िल पर पहुँचती है, जहाँ पिता–पूत में, गुरु और शिष्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता और वह (शिष्य) सेंट पॉल के शब्दों में पुकार उठता है :

यह मैं हूँ, नहीं, अब मैं नहीं रहा, यह ईशु मसीह है, जो मेरे अंतर में निवास करता है।

– पवित्र बाइबिल (गलातियों 2:20)

यह प्रेम की पुरातन परपंरा है।

प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समांहि।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (प्रेम का अंग 10, पृ.44)

यहाँ दो से एक होकर चलना पड़ता है। शिष्य अपना अस्तित्व गुरु में लीन कर देता है। सूफ़ियों की परिभाषा में वह 'फ़ना–फिशशेख़' हो जाता है, गुरु में समा जाता है। जो प्रभु में समा गया वह (सूफ़ियों की इस्तेलाह या परिभाषा में) 'फ़ना–फ़िल्लाह' हो जाता है, प्रभु में समा जाता है। महाराज कृपाल सिंह जी के शब्दों में, "गुरु God-man (प्रभु में अभेद) है अर्थात् God (परमात्मा) + इंसान। जो Guru-man अर्थात् गुरुमुख बन गया, प्रभु उस में आ गया कि नहीं?"

Receptivity या ग्रहणशीलता (गुरु से), जो संत कृपाल सिंह जी महाराज को पुरबले संस्कारों और गुरु कृपा की देन थी, उसे कैसे पैदा किया जाए? एक ऐसा शिष्य जिसकी कोई पिछली background या पृष्ठ. भूमि नहीं, उसे (ग्रहणशीलता को) कैसे प्राप्त कर सकता है? इस संदर्भ में महाराज कृपाल सिंह जी का यह मशहूर कथन सामने आता है, "एक इंसान ने जो किया, वही काम अन्य दूसरा इंसान भी कर सकता है, यदि उसे सही मार्गदर्शन और मदद मिले।" उन के गुरुपद काल ही में नहीं, शिष्यत्व काल में भी इस बारे में (गुरु से दिल से दिल की राह बनाने के बारे में) बहुत लोगों ने उनके मार्गदर्शन और सहायता से लाभ उठाया। अपने प्रवचनों और लिखतों में गुरु से यकदिली बनाने के मज़मून का (जिसे वे परमार्थ का मूल और आधार मानते थे) ऐसा सुविस्तार और बोधगम्य स्पष्टीकरण उन्होंने किया और ऐसी पते की बातें बताई हैं कि अध्यात्म के पूरे साहित्य में उसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। इस सिल. सिले में गुरु दर्शन पर वे बड़ा ज़ोर देते थे। गुरु दर्शन के बारे में बड़ी गूढ़ बातें आप बताया करते थे। दर्शन के प्रसंग में अपने सत्संग प्रवचनों में हुज़ूरे–पुरनूर उपासना का आदर्श प्रस्तुत करते थे, उप–आसन अर्थात पास बैठना। पास बैठना यह नहीं हैं कि 'दिल दिया कहीं और ही, तन साधु के संग'। साधु संग अर्थात साधु के पास बैठना यह है कि दर्शन में इतना लीन हो जाए कि तन–मन की सुधि भूल जाए। अपने जीवन का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए आप फ़रमाया करते थे : "हुज़ूर अपने काम में लीन होते, मैं चुप–चाप बैठा देखता रहता। अभिनेता होता है ना? उसकी हर बात में अभिनय होता है, खाने–पीने में, उठने–बैठने में, बोलने–च.

ालने में। एक तो उसका वास्तविक स्वरूप, जो वह स्वयं आप है (अर्थात् परमात्मा), एक जो वह बन के आया है, जो पार्ट वह करता है (अर्थात् इंसान)। हमारी तरह ही मानव देह वह रखता है, लेकिन वह कुछ और भी है। वह सदेह परमात्मा है। चित्त–वृत्ति एकाग्र कर के चुप–चाप बैठे देखते रहो, तो God-in-man की, प्रभु–सत्ता जो गुरु के मानव तन में काम करती है, उसकी झलक मिलती है।"

जब आप श्री हुज़ूर महाराज जी के चरणों में जाते, तो 'दीदा शौ यकसर' अर्थात् सर्वथा आँख बन जाते, अपलक नेत्रों से चुप–चाप देखते रहते। दर्शन में ऐसे लीन हो जाते कि तन–बदन की सुधि न रहती। पास बैठे लोगों को एक आनन्द की अनुभूति होती, मुफ़्त नशा मिल जाता। एक दिन आप सत्गुरु दयाल के दर्शनों में लीन थे, कोई और वहाँ मौजूद न था। एक भक्त महिला ने देखा, तो शोर मचा दिया, "मैंने आप दोनों की चोरी पकड़ ली है।" सत्गुरु दयाल हँसकर कहने लगे, "क्या चोरी पकड़ ली है?" बोली, "आप दोनों देह में नहीं हो, उठकर आँखों में आ गए हो।"

ऐसे कई दृष्टांत उनकी जीवन गाथा में मिलते हैं, जिन पर अमर जीवन की मुहर लगी हुई है– वह अमर जीवन जो उन्होंने ख़ुद पाया और जिसका अंश वे दुनिया भर के परमार्थाभिलाषियों को देते रहे। उनकी हर लिखत, हर कथन, उनके उस जीवन का, 'abundance of heart' का, उनके करुणामय हृदय के अनन्त स्रोत का रंग और असर लिए हुए है। उदाहरणार्थ उपरोक्त विषय (अर्थात् परमार्थ में रसाई, जो गुरु से एकात्मता की देन है) पर उनका ये सारगर्भित कथन, "मैंने सत्गुरु दयाल से कभी कोई सवाल नहीं किया। बस चुप–चाप बैठे दर्शन करता रहता। देखने–देखने में मुझे सब कुछ मिल गया, बिन माँगे मिल गया।"

जीवन की पड़ताल

जीवन की पड़ताल की डायरी परमार्थाभिलाषियों तथा सतपथ के यात्रियों को संत कृपाल सिंह जी महाराज की खास देन है तथा यह उनके अपने जीवन, अनुभव और विश्व के सारे धर्मों–मज़हबों–मतों की शिक्षाओं

के तुलनात्मक अध्ययन का निचोड़ है। उन्होंने स्वयं सात साल की उम्र में डायरी रखना शुरू कर दिया था, जिसमें दिन भर की ग़लतियों को, कड़ाई और बेलिहाज़ी से लिखते और आगे के लिए वे उन ग़लतियों से बचने का यत्न करते। आगे चल कर जब उन्होंने गुरु पद का कार्य शुरू किया, तो आत्म–निरीक्षण की डायरी को एक ऐसा वैज्ञानिक रूप दिया, जिस में दुनिया के सारे धर्मग्रंथों और आज तक आए सारे महापुरुषों की शिक्षाओं का निचोड़ उन्होंने प्रस्तुत कर दिया और अपने शिष्यों और सत्संगीजनों को डायरी के द्वारा अपनी त्रुटियों को चुन–चुन कर बाहर निकालने पर ज़ोर देते रहे। डायरी के विषय मे आप फ़रमाते थे कि इंसान कुछ भी न करे, सच्चाई के साथ केवल डायरी भरना शुरू कर दें, तो उसका जीवन पलटा खा जाएगा और दिल का दर्पण साफ़ होकर सत्य की झलक उसमें पड़ने लगेगी। डायरी के बारे में हुज़ूर महाराज जी ने विस्तार के साथ कहा और लिखा है। यहाँ उनका एक ही कथन दोहराना काफ़ी है, "हमें पता ही नहीं कि हम कहाँ खड़े हैं। यह पता हो कि हम गंदगी में बैठे हैं तो उससे निकलने की कोशिश भी करेंगे। हमें पता ही नहीं कि हममें क्या त्रुटियाँ हैं। अपनी त्रुटियों को देखें, तभी पता चले। अपनी तरफ़ नज़र मार कर देखें, तो दूसरों में दोष निकालने की फ़ुर्सत ही न मिले।"

अपने व्यस्त–अति–व्यस्त जीवन में उन्होंने कई किताबें लिखीं, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण किताब, वर्तमान युग का महान् धर्मग्रंथ, 'गुरुमत सिद्धांत' है। यह अमर रचना, जो गुरुमुखी भाषा में है, दो भागों में, दो हज़ार पृष्ठों में फैली हुई है। इसमें गुरु ग्रंथ साहिब और दुनिया के सभी समाजों के धर्मग्रंथों के प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि धर्मग्रंथ, जो आज तक लिखे गए और महापुरुष, जो आज दिन तक आए, सबकी मूल तालीम एक ही है। इस महान ग्रंथ में दुनिया के सारे धर्मग्रंथों का सार प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम के परमार्थाभिलाषियों के लिए आपने अंग्रेज़ी भाषा में कई ग्रंथ रचे। आपकी पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, स्पेनिश, इंडोनेशियन, रूसी, ग्रीक आदि (भारत के अतिरिक्त विश्व की कुल 14 भाषाओं में) भाषाओं में हो चुका है।

अध्यात्म का सार्वभौमिक प्रसार

36 वर्ष की सरकारी नौकरी के बाद, मार्च 1947 ई. में आप 'डिप्टी असिस्टेंट कन्ट्रोलर ऑफ़ मिलिट्री अकाउंट्स' के पद से रिटायर हुए और उसके बाद, सत्गुरु दयाल हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के मिशन को पूरा करने में लगे रहे, जो 2 अप्रैल, 1948 ई. को अपना रूहानियत का अर्थात् जीवों के कल्याण का काम, आपको सौंप कर परमधाम सिधार गए। गुरु के आदेशानुसार आपने 1948 ई. में 'रूहानी सत्संग' और 1951 ई. में दिल्ली में 'सावन आश्रम' की स्थापना की, जहाँ जात–पात, रंग–वर्ण, देश व समाज के भेद–भाव के बग़ैर हरेक परमार्थाभिलाषी को, आत्मतत्त्व का व्यक्तिगत अनुभव उन्होंने प्रदान किया। धर्म को और प्रभु को मानने वाले लोगों को– वे किसी भी धर्म, देश, जाति, नस्ल के हों– आपस में जोड़ने और मिलाने की साँझी धरती, 'Common Ground', जो हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज के ज़माने में क़ायम हो चुकी थी और जिसके रूहानी फैज़ (पारमार्थिक लाभ) का सिलसिला (अर्थात् परमार्थाभिलाषियों को मन–इंद्रियों से ऊपर लाकर आत्मानुभव प्रदान करने के कार्य का सिलसिला) भारत के कोने–कोने में और भारत से बाहर यूरोप, इंग्लैंड और अमरीका तक फैल चुका था, उस काम को उन्होंने अपने 26 वर्ष की पल–पल कार्यरत, व्यस्त–अति–व्यस्त, रूहानी पादशाही में और आगे बढ़ाया और इतना फैलाया कि यूरोप के लगभग सभी मुल्कों– अफ़्रीका के विभिन्न देशों, इंग्लैंड, अमरीका (उत्तरी और दक्षिणी अमरीका), कॅनेडा, पूर्व में मलाया, कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया आदि देशों में रूहानी सत्संग की 250 से ऊपर शाखायें उनके जीवन काल में स्थापित हो चुकी थीं।

विश्व यात्राएँ

1955 ई. में उन्होंने पश्चिम–यूरोप, इंग्लैंड, अमरीका आदि की यात्रा की और लोगों को आत्मानुभव की दात दी। उस ऐतिहासिक विदेश यात्रा में उन्होंने, जो महान कार्य सार्वभौमिक स्तर पर उन्हें करना था, उसकी पक्की नींव रखी और अपने महान सत्गुरु की रूहानी दात के डंके

सारी दुनिया में बजा दिए। पश्चिमी देशों में भाषण पर टिकट लगता है, जिसका एक हिस्सा वक्ता को मिलता है। महाराज जी ने हर जगह मुफ़्त साक्षात्कार (free talks) दिए। लोगों ने उन्हें धन देना चाहा, तो उन्होंने कहा, "कुदरत की सारी दातें–रोशनी, पानी, हवा–मुफ्त हैं और सबके लिए हैं। रूहानियत (आत्म–ज्ञान) भी कुदरत की देन है। वह सबके लिए है और सबको मुफ़्त मिलेगी।" दो वर्ष पश्चात् 1957 ई. में वे सर्वसम्मति से 'विश्व धर्म संघ' ('World Fellowship of Religions)' के प्रधान चुने गए, जिसे उसके संयोजक, मुनि सुशील कुमार जी महाराज, एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था का रूप देना चाहते थे। संत जी ने उसका संविधान बनाया और उस संस्था के अंतर्गत, जो चार विश्व सम्मेलन, 1957 ई. में दिल्ली में, 1960 ई. में कलकत्ता में और 1963 ई. और 1970 ई. में फिर दिल्ली में हुए, वे सब उनकी अध्यक्षता में हुए। इन सम्मेलनों के फलस्वरूप धर्मों का एक शक्तिशाली संयुक्त मंच (common platform) बना। विभिन्न धर्मों के लोगों के एक जगह मिल बैठने और विचार–विमर्श करने की प्रथा चली, जिससे आपस की ग़लतफ़हमियाँ दूर हुईं और लोग एक–दूसरे के क़रीब आने लगे, भेद–भाव दूर हुए, धर्मान्धता, ता'स्सुब, तंगदिली कम हुई और समन्वय और सहिष्णुता की भावना को बढ़ावा मिला। मगर उसके साथ ही लोगों में अपने–अपने समाज को आगे बढ़ाने की भावना बनी रही, बल्कि और मज़बूत हुई और ऐसी आवाज़ें सुनाई देने लगीं, "दुनिया भर के हिन्दुओं, एक हो जाओ, मुसलमानों, एक हो जाओ।" इस चीज़ को देखकर महाराज जी इस नतीजे पर पहुँचे कि अब इसके बाद एक और क्रांतिकारी क़दम आगे बढ़ाना होगा।

धर्मों और मज़हबों का–सभी समाजों का–उद्देश्य तो यही है कि इंसान नेक–पाक सदाचारी बने, सही मा'नो में इंसान बने। यह सोचकर उन्होंने एक महान क्रान्तिकारी क़दम उठाने का फ़ैसला किया, जो 'मानव केन्द्र' की स्थापना और विश्व मानव एकता सम्मेलन के रूप में दुनिया के सामने आया।

1962 ई. में ईसाइयों की डेढ़ हज़ार वर्ष पुरानी धर्म संस्था, 'Sovereign Order of St. John of Jerusalem, Knights of Malta' ने,

जो मुस्लिम–ईसाई धर्मग्रंथों में 'Knight Templars' कहलाते थे, महाराज जी को 'Grand Commander' की उपाधि से सम्मानित किया। इसके लिए उन्हें अपने डेढ़ हजार वर्ष पुराने संविधान में संशोधन करना पड़ा। सिक्ख समाज के एक महापुरुष को धर्मवीर मानकर उन्होंने स्वीकार किया कि धर्म और आस्तिकता ईसाइयों का एकाधिकार नहीं। कैथोलिक ईसाइयों के धर्मगुरु पोप ने आपसे भेंट करने के बाद ग़ैर–ईसाइयों से मेल–जोल बढ़ाने की घोषणा की और इस हेतु जो सलाहकार समिति बनायी, उसमें महाराज कृपाल सिंह जी का नाम भी शामिल किया।

1963 ई. में हुज़ूर दूसरी बार विश्व यात्रा पर गए। तब तक रूहानी सत्संग की दो सौ शाखायें सारी दुनिया में फैल चुकी थीं। इस यात्रा में उन्होंने रूहानी सत्संग की शाखाओं का गठन किया, नयी शाखायें स्थापित कीं, नये परमार्थाभिलाषियों को नामदान दिया और साथ ही मानव एकता और विश्व धर्म सम्मेलनों के common platform का संदेश लोगों को दिया। दूसरी विश्व यात्रा में हुज़ूर महाराज जी ने विभिन्न स्तरों पर काम किया। वे हुक्मरानों(विभिन्न देशों के सत्ताधीशों) से मिले और उन्हें बताया कि प्रभु ने लाखों लोगों की सुरक्षा और कल्याण का जो काम उन्हें सौंपा है, उसे वे पूरी ईमानदारी के साथ पूरा करें। यदि पड़ौसी देश अव्यवस्थित या कमज़ोर पड़ जाए, तो वे उसकी मजबूरी का लाभ उठा कर उसका शोषण न करें, बल्कि उसकी सहायता करें। वे राजनीतिज्ञों, जन–नायकों, धर्माचार्यों, सभी से मिले। ईसाई समाज की प्राचीनतम धर्म संस्था से सम्मान प्राप्त करने के कारण उनके लिए सारे गिरजों के दरवाज़े खोल दिए गए थे और इस यात्रा की अधिकतर प्रवचन (talks) उन्होंने गिरजों में दिए, बल्कि नामदान तक गिरजों में दिया। ऐसी बात आज तक नहीं हुई थी। अगस्त 1972 ई. से जनवरी 1973 ई. तक, पाँच महीने की अपनी तीसरी और आख़िरी विश्व यात्रा में, हुज़ूर महाराज ने सिर्फ़ एक काम किया–खुले आम लोगों को नामदान देने का काम। उपदेश–प्रवचन के बाद अगले दिन सबक़ो भजन पर बिठा दिया जाता और नामदान अभिलाषियों को, हरेक को नामदान दिया जाता।

मानव केन्द्र की स्थापना

1969 ई. में हुज़ूर महाराज जी की हीरक जयन्ती सब समाजों ने मिल कर मनायी। विश्व एकता और राष्ट्र नवचेतना के अग्रदूत और मार्गदर्शक का इससे बढ़कर अभिनन्दन नहीं हो सकता था कि उनकी हीरक जयन्ती का वर्ष राष्ट्रीय एकता वर्ष के रूप में मनाया गया। सभी समाजों ने उस वर्ष राष्ट्रीय एकता के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का प्रण किया। महाराज जी मंच पर भाषण करके संतुष्ट हो जाने वाले नहीं थे। उसी वर्ष उन्होंने मानव केन्द्र की योजना बनायी। उसमें श्री काका साहिब कालेलकर, पं. दीनानाथ दिनेश और अन्य महापुरुषों को साथ लिया और 1970 ई.में, देहरादून में मानव केन्द्र का भव्य स्वरूप, भारत का सबसे बड़ा, पक्का अंडाकार सरोवर, बाग़, अस्पताल आदि बनकर तैयार हो गए। हीरक जयन्ती के अवसर पर अपनी जन्मतिथि, छः फ़रवरी के अनुरूप, छह शब्दों में उन्होंने अपनी तालीम का जो निचोड़ पेश किया था, 'भले बनो, भला करो, एक रहो'– मानव केन्द्र उसका साकार स्वरूप था।

विश्व मानव एकता सम्मेलन

विश्व धर्म सम्मेलन के महान कार्य और उसके व्यापक प्रभाव का उन्हें पूरा अहसास था। लेकिन उन्होंने देखा और अपने प्रवचनों और किताबों में कहा और लिखा कि समाजों के विवेकवान लोग (नेतागण, धर्माचार्य) तो बहुत हद तक एक हो गए हैं और भेद–भाव से ऊपर उठ गए हैं, लेकिन उनके अनुयायियों में वह बात पैदा नहीं हुई। तभी उन्होंने धर्म की बजाय मानव और मानवता के आधार पर एकता सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। विश्व के इतिहास में अपने ढंग का यह पहला प्रयास था। इससे पहले सम्राट अशोक और हर्ष के ज़माने में जो सम्मेलन हुए, वे धर्म के आधार पर हुए थे। दिल्ली और पूरे देश में इतना बड़ा विश्व स्तर का सम्मेलन इस से पहले कभी नहीं हुआ था। विभिन्न देशों के पाँच सौ से अधिक प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए। भारत के प्रतिनिधि उनके अतिरिक्त थे। इस सम्मेलन की एक बड़ी विशेषता यह थी कि

यद्यपि इसके लिए धन और साधन रूहानी सत्संग ने जुटाये, लेकिन महाराज जी ने यह सम्मेलन रूहानी सत्संग की तरफ़ से नहीं किया, बल्कि सब समाजों के सम्मिलित तत्त्वावधान में किया। उन्होंने सम्मेलन के आठ सचिव नियुक्त किए, जो विभिन्न समाजों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

महाराज जी के शब्दों में, "परमात्मा ने इंसान बनाये। उसने मुहर (ठप्पा) लगा कर नहीं भेजा कि यह हिन्दू है, यह मुसलमान। समाजें इंसान ने बनाईं, इसलिए कि इंसान सही मानों में इंसान बने, नेक–पाक सदाचारी बने, इंसान–इंसान के काम आए, जिससे उसकी जीवन यात्रा सुख से व्यतीत हो और फिर सब मिलकर, जहाँ जिस समाज में कोई है, उसमें रहते हुए और अपनी–अपनी समाज की मर्यादा का पालन करते हुए, उस लक्ष्य को पाए, जोकि मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य और सब समाजों का साँझा आदर्श है। समाजें इंसान के लिए बनीं, इंसान समाजों के लिए नहीं बना था। मग़र वह मक़सद किनारे रह गया। हम समाजों के उद्देश्य (मानव निर्माण और प्रभु प्राप्ति) को भूलकर अपने–अपने समाजों को ही बनाने–सँवारने में लग गए।" विश्व मानव एकता सम्मेलन में हुज़ूर महाराज जी ने इंसान और इंसानियत के आधार पर एकता का आदर्श पेश किया। उन्होंने कहा, "इंसान सब एक हैं। बाहर की और अन्दर की बनावट सबकी एक है। एक ही तरह से सब पैदा होते हैं और मरते हैं। वह हक़ीक़त सबमें है, सब को पैदा करने वाली, सबकी प्रतिपालक और जीवनाधार है। एकता तो आगे ही मौजूद है, मगर हम भूल गए हैं।" उस व्यापक जन्मजात एकता के आधार पर उन्होंने इंसान, इंसान को मिलाने का यह महान प्रयास किया।

1 अगस्त, 1974 ई. को (महाप्रयाण से 20 दिन पहले) भारत के संसद भवन में, उनके सम्मान में एक सभा आयोजित की गयी जिसमें उनको मानपत्र प्रदान किया गया। इस सभा की अध्यक्षता संसद के स्पीकर श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लों ने की। संसद के इतिहास में यह पहला मौक़ा था, जब संसद सदस्यों की ओर से संसद भवन में एक आध्यात्मिक महापुरुष को सम्मानित किया गया।

संत कृपाल सिंह जी महाराज ने विभिन्न स्तरों पर और विभिन्न दिशाओं में, विश्व में नव जागृति और नव चेतना के जो बीज बोए, वे एक दिन फल लायेंगे और वह वक़्त आ गया है। जैसा कि वे आख़िरी दिनों में कहा करते थे, "सतयुग कोई आसमानों से फट पड़ने वाला नहीं, कलयुग के घोर अंधकार ही से उसका अभ्युदय होगा और वह दिन दूर नहीं। यह जो नयी चेतना, नयी जागृति सब समाजों में दिखाई दे रही है, यह प्रभु प्रेरणा से है और सतयुग के अभ्युदय की निशानी है।"

सावन-कृपाल दयाधारा का नया दौर

हुज़ूर संत कृपाल सिंह जी महाराज अपने जीवन की संध्या–बेला में अक्सर कहा करते थे कि यह मिशन मेरे बाद भी जारी रहेगा और दिनों–दिन आगे बढ़ेगा और फैलेगा। 21 अगस्त 1974 को संत कृपाल सिंह जी महाराज संत दर्शन सिंह जी महाराज को अपने मिशन का कार्यभार सौंपकर महासमाधि में लीन हो गए। संत दर्शनसिंह जी ने 'सावन–कृपाल रूहानी मिशन' की स्थापना की और अगले 15 वर्षों तक रूहानी मिशन का कार्यभार संभाला। आज, 'सावन–कृपाल रूहानी मिशन' के अंतर्गत हम इन दो महापुरुषों की विशाल दयाधारा को नयी–नयी दिशाओं में बढ़ते–फैलते देख रहे हैं। इतनी तेज़ी से काम आगे बढ़ा–फैला है कि देख कर अकल चक्कर खाती है। आज वही कार्य संत दर्शन सिंह जी महाराज के उत्तराधिकारी, संत राजिन्दर सिंह जी महाराज की देखरेख में चल रहा है।